दत्तोपन्त ठेंगड़ी

भारतीय मजदूर संघ

कार्यकर्त्ता की मनोभूमिका

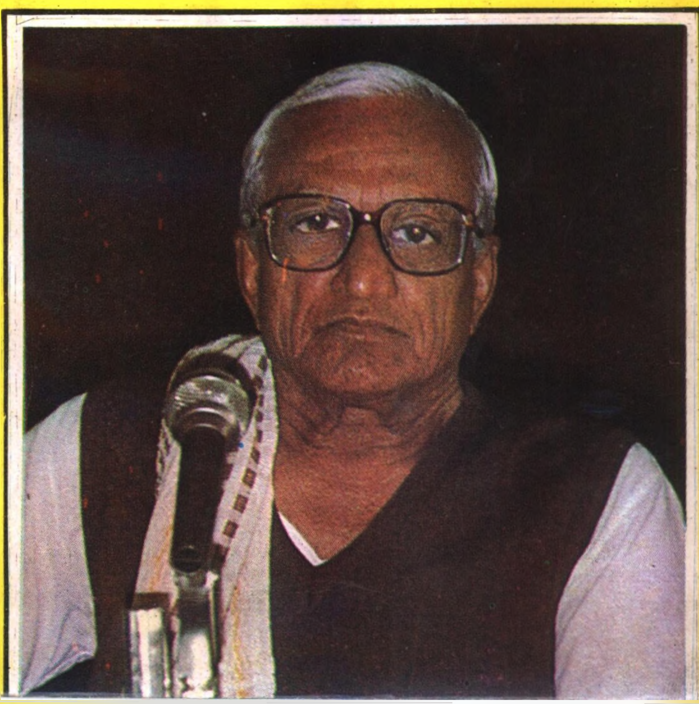

"यह दुनिया एक धर्मशाला है। दिन और रात यह उस धर्मशाला के दरवाजे हैं। इस धर्मशाला में कितने ही सुल्तान आते हैं, एक दो दिन ठहरते हैं और फिर यहाँ से चले जाते हैं, लेकिन यहाँ कोई टिकता नहीं।" मैंने कहा, सरकारों का एवं हम सभी का भी यही हाल है।

—उमर खैय्याम

(हरीश तिवारी)
प्रदेश मन्त्री
भारतीय मजदूर संघ
उत्तरांचल

भारतीय मजदूर संघ

कार्यकर्त्ता की मनोभूमिका

दत्तोपन्त ठेंगड़ी

भारतीय मजदूर संघ के स्थापना दिवस के शुभ अवसर पर

२३ जुलाई १९९२ ई०

श्रावण कृष्ण ८ गुरुवार सम्वत् २०४९ (युगाब्द ५०९४)

विश्वकर्मा श्रमिक शिक्षा संस्था

नागपुर

प्रकाशक : विश्वकर्मा श्रमिक शिक्षा संस्था
नागपुर

मुद्रक : उर्वशी प्रेस, वैद्यवाड़ा, मेरठ–250 002

मूल्य : रु० 7.00

प्राप्ति-स्थान : केन्द्रीय कार्यालय
भारतीय मजदूर संघ
रामनरेश भवन, तिलक गली
पहाड़ गंज, नई दिल्ली–110 055

प्रकाशक की दृष्टि

फरवरी 1992 की 26, 27, 28 को नागपुर में भारतीय मजदूर संघ का पाँचवाँ अभ्यासवर्ग हुआ। संख्या 410 थी। इस वर्ग में मा० ठेंगड़ी जी के चार भाषण एवं एक प्रश्नोत्तर सत्र हुआ।

प्रथम भाषण, वर्ग के उद्घाटन के रूप में हुआ। इसे भारतीय मजदूर संघ की अब तक की प्रगति की गाथा, उसकी विजय-गाथा या मजदूर संघ की विशेषताएँ—जो कुछ कहें, सब इसमें समाविष्ट हैं। इस भाषण से कार्य की प्रगति की दिशा, कार्य की गति, प्रारम्भिक अवस्था में व्यर्थ का व्याप बढ़ाने की अपेक्षा छोटी और ठोस बातों पर ध्यान देना, ऐसा अनेक प्रकार का दिशा-दर्शन मिलता है।

द्वितीय भाषण से लगता है कि "कार्यकर्त्ता की भूमिका" पर प्रकाश डाला गया है। किन्तु कार्यकर्त्ताओं के सामूहिक नेतृत्व की भूमिका कैसी रहे—इसका विचार भी इस भाषण में प्रमुखता से किया गया है। भाषण की विषयवस्तु का सारगर्भित अर्थ है—भौतिक उपयोग की लालसा से उत्पन्न होने वाली तरंगों एवं उनके दुष्परिणामों पर सामूहिक नैतिक नेतृत्व किस तरह अंकुश का काम करे। पर्याय से भारतीय मजदूर संघ की भूमिका क्या हो और कैसी हो, इसी का यह विवरण है।

तृतीय भाषण में भारतीय मजदूर संघ के कार्यकर्त्ताओं की सजग दृष्टि, सतर्कता, छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देने की आवश्यक वृत्ति आदि का मार्गदर्शन है।

और चतुर्थ भाषण में, भारतीय मजदूर संघ को किस तरह के निष्ठावान् एवं कर्मठ कार्यकर्त्ताओं की अपेक्षा है, इस पर विचार प्रकट किया गया है।

यूँ देखा जाय तो मजदूर संघ के मंच से, मजदूर संघ के कार्यकर्त्ताओं के लिए, मजदूर संघ की भूमिका के विषय पर किया गया यह मार्गदर्शन है। लेकिन बारीकी से सोचने पर यह ध्यान में आएगा कि यह सम्पूर्ण मार्गदर्शन समाजहित या देशहित के किसी भी कार्य में लगे कार्यकर्त्ताओं के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

सारांश रूप में कहा जाय तो यह भारतीय मजदूर संघ की प्रगति, गति एवं नियति का दिग्दर्शक है।

उक्त कारणों से यह पुस्तिका न केवल भारतीय मजदूर संघ के कार्य-कर्त्ताओं के लिए उपयोगी है, अपितु निःस्वार्थ भाव से कार्य करने वाले सभी संगठनों के कार्यकर्त्ताओं के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है, यह हमारा विश्वास है। जिन-जिन हाथों में यह पुस्तक जायेगी, वहाँ भी यही विश्वास उत्पन्न होगा, इसमें सन्देह नहीं। इसी विश्वास से यह पुस्तक प्रकाशित करते हुए हमें आनन्द हो रहा है।

प्रकाशक

अनुक्रम

	प्रकाशक की दृष्टि	iii
1.	भारतीय मजदूर संघ का अब तक का संतोषजनक प्रवास	1
2.	युद्ध स्तर पर अखण्ड सावधान रहते हुए शक्ति संचय करना	19
3.	हमारा संगठन है धर्मदण्ड, अर्थात् विकृतियों पर अंकुश	33
4.	मोहमाया की रस्सियाँ काटें	51
5.	प्रश्नोत्तर काल के सत्र में विभिन्न विषयों पर चर्चा	63

भारतीय मजदूर संघ का अब तक का संतोषजनक प्रवास

हम अपने अखिल भारतीय अभ्यास वर्ग के लिए यहाँ एकत्रित हुए हैं। इसके पूर्व चार अभ्यास वर्ग हो चुके हैं। पहला अभ्यास वर्ग 1959 में भुसावल में हुआ था। दूसरा वर्ग 1977 में बड़ौदा में हुआ था। तीसरा जनवरी 1980 में पूना में और चौथा अभ्यास वर्ग 1984 में 29 अक्टूबर से 2 नवम्बर तक इन्दौर में हुआ था। इन्दौर का अभ्यास वर्ग भुलाया नहीं जा सकता। अब यहाँ नागपुर में अपना यह पाँचवा अभ्यास वर्ग है।

पारिवारिक एकत्रीकरण

हम सब जानते हैं कि "भारतीय मजदूर संघ" मात्र ट्रेड यूनियन संस्था नहीं है यह एक परिवार है और इस कारण इस परिवार के विभिन्न लोग जब कहीं भी एकत्रित आते हैं तो वैसा ही आनन्द होता है, जैसा पारिवारिक एकत्रीकरण से होता है। किसी परिवार में माँ-बाप देहात में रहते हैं और चार लड़के चार बड़े शहरों—बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास में रहते हैं। दसहरा, दीपावली, होली आदि के अवसर पर चारों भाई अपने बीबी-बच्चों के साथ माँ-बाप से मिलने आते हैं—तो पूरे परिवार का एकत्रीकरण होता है। इस एकत्रीकरण से परिवार के सभी सदस्यों को जो आनन्द होता है। विभिन्न स्थानों से भारतीय मजदूर संघ के बन्धु जब एकत्रित आते हैं तो हम सब को भी उसी प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है।

परन्तु उद्देश्य अलग-अलग

चाहे हमारा वर्ग हो, सम्मेलन हो, बैठक हो, या अधिवेशन हो, हम जब एकत्रित आते हैं तो वह पारिवारिक एकत्रीकरण जैसा ही होता है। परन्तु इन सब कार्यक्रमों का उद्देश्य अलग-अलग होता है। वर्ग का उद्देश्य भी कुछ अलग ही होता है। यदि यह समझ में नहीं आया तो वर्ग की कार्यवाही कुछ अलग ढंग से क्यों चल रही है यह भी समझ में नहीं आएगा।

सभा, सम्मेलनों का मुख्य उद्देश्य होता है कि बाहर के लोगों को, जनता को, सरकार को, समाचार पत्रों को, जनसंचार साधनों (मास मीडिया) को पता चले कि हम क्या हैं, क्या चाहते हैं अर्थात् अपने बारे में बाहर के लोगों को जानकारी देना यह उद्देश्य सभा सम्मेलन या अधिवेशनों का होता है।

वर्ग का उद्देश्य

वर्ग का उद्देश्य इससे अलग होता है। हम क्या हैं—इसकी जानकारी स्वयं अपने आपको कराना, यह वर्ग का उद्देश्य होता है। यह ठीक है कि सभा–सम्मेलननों में भी हमें अपने बारे में कुछ जानकारी प्राप्त हो जाती है। लेकिन दोनों में यह एक बहुत बड़ा अन्तर है कि सभा सम्मेलनों का मुख्य उद्देश्य होता है—अपने बारे में बाहर के लोगों को जानकारी करा देना लेकिन वर्ग का उद्देश्य होता है—अपने बारे में स्वयं अपने आपको जानकारी देना। इसी अन्तर के कारण सभा सम्मेलनों की कार्यवाही अलग ढंग की होती है और वर्ग की कार्यवाही उससे भिन्न प्रकार की होती है।

यहाँ हम सब एकत्रित हुए हैं। कुछ कठिनाई अवश्य ही हमारे सामने है, जैसे भाषा की कठिनाई है। कार्यवाही हिन्दी में चल रही है और दक्षिण से जो लोग आए हैं उनके लिए हिन्दी समझना कठिन होता है। वे लोग न समझ सकें तो चलेगा, लेकिन गलत न समझें, अन्यथा भ्रम उत्पन्न होता है। भले ही वे अन्डरस्टैंड न करें पर मिसअन्डरस्टैंड होने का खतरा बना रहता है। तो भी वहाँ से अपने जो प्रमुख लोग यहां आए हुए हैं वे जितना समझ सकें, उतना सब ग्रहण कर, अपने अन्य लोगों को बता सकेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है।

यह अपना पांचवा अभ्यास वर्ग है। इसका अर्थ यह है कि यहाँ आए हुए लोग अनुभवी हैं, तपे हुए हैं मंजे हुए हैं। हो सकता है कुछ लोगों की अनुभव की प्रक्रिया अभी चल रही होगी। लेकिन मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि भुसावल के वर्ग में जैसे सभी लोग नए रंगरूट थे, वैसे यहाँ नहीं हैं। जिन्होंने कुछ संगठन का कार्य किया है, कुछ संघर्ष किया है, कई बार हार और जीत से जिन्हें पाला पड़ा है, और इस कारण जिन्हें कुछ अनुभव प्राप्त हुआ है, ऐसे लोग यहाँ हैं। जिन्होंने कई युद्धों में भाग लिया ऐसे पुराने घोड़ों को अंग्रेजी में "ओल्ड वॉर हॉर्सिस" कहते हैं। ऐसे ही पुराने अनुभवी लोग यहाँ एकत्रित हुए हैं। और इस कारण भुसावल के वर्ग का जो स्तर था तथा इस अभ्यास वर्ग का स्तर दोनों में अन्तर रहना स्वाभाविक है। फिर भी हम कौन हैं यह जानने की आवश्यकता है। वैसे तो हम जानते ही हैं लेकिन भूल जाते हैं। हम जानते हैं लेकिन उसकी कड़ी नहीं जोड़ पाते। इसी कारण आज के फैशनेबल लोग ऐसे वर्ग को अभ्यास वर्ग (रिफ्रेशर्स कोर्स) कहते हैं।

अब तक के कार्य का सिंहावलोकन

संक्षेप में हम यह देखें कि हमारा कार्य प्रारम्भ हुआ उस समय की स्थिति एवं आज की स्थिति में क्या अन्तर है। भारतीय मजदूर संघ के अब तक के कार्य का हम सिंहावलोकन करें। तीन दिनों तक हम यहाँ रहेंगे। अलग कई विषय सामने आएंगे। कई विषयों पर विस्तृत तथा गहन चर्चा होगी। इसलिए किसी

एक विषय का उल्लेख मैं नहीं करता। परन्तु तब और अब माने हम कहाँ से चले और अब कहाँ तक पहुँचे हैं। प्रवास जब हमने शुरू किया तभी से हमको पता है कि इसको कहाँ पहुँचना है। लेकिन कितना रास्ता हम तय कर चुके हैं,—इस सबका विस्तृत विचार ही सिंहावलोकन है। अतः इस प्रारम्भिक भाषण में इसका थोड़ा सा उल्लेख प्रासंगिक ही रहेगा तथा आवश्यक भी रहेगा, ऐसा मैं समझता हूँ।

कार्यारम्भ एवं तब की स्थिति

23 जुलाई 1955 को भारतीय मजदूर संघ का कार्य प्रारम्भ हुआ। उस समय की स्थिति सब के ध्यान में है। साम्यवादियों का लाल झण्डा ही मजदूरों का झण्डा है, यह मान्यता उन दिनों थी। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर साम्यवाद (कम्युनिजम) अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। एक तिहाई दुनिया पर उनका लाल झण्डा लहरा रहा था। और यह चर्चा सुनाई पड़ती थी कि शेष दो तिहाई दुनिया पर विजय पाने की तैयारी वे कर रहे हैं। हिन्दुस्तान की राजनीति में भी विकल्प के रूप में टक्कर की प्रभावी पार्टी के नाते कम्युनिस्ट पार्टी है, ऐसा माना जाता था। उन्हीं दिनों गैर-कांग्रेसी सरकार के रूप में, केरल में कम्युनिस्टों की सरकार बनी। विशेषता यह थी कि यह गैर कांग्रेसी सरकार थी—पहली गैर-कांग्रेसी सरकार थी—और जनतांत्रिक पद्धति से चुनी गई पहली गैर-कांग्रेसी सरकार थी और हिन्दुस्तान ही नहीं तो दुनिया की जनतान्त्रिक पद्धति से चुनी गई पहली साम्यवादी सरकार पहले केरल में ही स्थापित हुयी थी। साम्यवाद का विजयी अश्व इस तरह से बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा था। उस समय मान्यता प्राप्त केन्द्रीय श्रम संगठन चार थे। इंटक, आयटक एच.एम.एस. और यूटीयूसी। चारों को भारत सरकार की मान्यता प्राप्त थी। चारों किसी ना किसी राजनैतिक दल के विंग (मोर्चा) के रूप में काम कर रहे थे। और ट्रेड यूनियन की भूमिका किसी ना किसी राजनैतिक दल के विंग के रूप में काम करने की हो सकती है, यह भी मान्यता उस समय देश में थी।

हमारी विजय की सीढ़ियाँ

पहला पड़ाव : गैर-राजनैतिक संगठन

हम सब जानते हैं कि जब हमने अपना काम प्रारम्भ किया उस समय हमारे पास ना तो कोई यूनियन थी और ना ही कोई उसका रजिस्ट्रेशन (पंजीयन) था न कोई कार्यकर्त्ता थे ना ही पैसा (फण्ड) था। शून्य से ही कार्य का प्रारम्भ हुआ। मात्र संख्या का ही यदि विचार किया तो अभी हो रही सदस्यता-सत्यापन (व्हेरिफिकेशन) में क्या स्थिति रहेगी यह आगे पता चलेगा। लेकिन

हम सब जानते हैं कि भारत भरकार ने जो घोषणा की है उसके अनुसार संख्या के मामले में हम नम्बर दो पर हैं। हम सब इस सरकारी रेकार्ड के बारे में भी जानते हैं कि उनके आँकड़ों के अनुसार आयटक और सीटू की संयुक्त शक्ति से हमारी शक्ति अधिक है। जहाँ तक यथार्थ सच्चे श्रमिक संगठन (जेनविन ट्रेड यूनियनिजम) का प्रश्न है हमने प्रारम्भ से ही इस पर विश्वास प्रगट किया है एवं इसी पर बल दिया है। हमारा यह संगठन मजदूरों का है, मजदूरों के लिए हैऔर मजदूरों द्वारा चलाया गया है। और इसीलिए यह संगठन गैर-राजनैतिक (नॉन पॉलिटिकल) हो ऐसा हमारा आग्रह रहा है। लोगों ने कहा कि ये नए मुल्ला हैं, इन्हें कुछ पता नहीं है। ट्रेड यूनियन चलाना यानें निकर डालकर दक्ष-आरम् करना नहीं है। यह बड़ी टेढ़ी खीर है। हम ही इसके उस्ताद हैं। अन्य कोई इस क्षेत्र में काम कर नहीं सकता। पर हम "गैर राजनैतिक यथार्थ सच्चे श्रमिक संगठन" का सिद्धांत लेकर चले। उस समय लगभग सभी लोगों ने भारतीय मजदूर संघ को पागल कहा, क्योंकि तब हमने जो सिद्धान्त लिया वैसा उस समय भारत में नहीं था।

साम्यवाद लड़खड़ाया

हाल ही में नवम्बर 1990 में मास्को में जो "वर्ल्ड ट्रेड यूनियन कॉनफरेन्स" (विश्व श्रमिक कांग्रेस) हुई उसमें 135 देशों के 400 से भी अधिक श्रमिक संगठनों के सेंटर्स (केन्द्र) ने अपने लगभग 1250 प्रतिनिधियों के साथ भाग लिया। सेन्टर का अर्थ है विभिन्न श्रम-संगठन जैसे—आयटक, सीटू आदि। इस सम्मेलन में कम्युनिस्ट और गैर-कम्युनिस्ट दोनों थे। यहाँ चर्चा हुई। बहुत बड़ी संख्या इस पक्ष में थी कि गैर-राजनैतिक श्रम-संगठन ही मजदूरों के हित में होता है। राजनैतिक श्रम-संगठनों से मजदूरों का नुकसान होता है। मेजबान देश रूस था जहाँ यह सम्मेलन हो रहा था। इस रूस ने इस सम्मेलन के लगभग सवा मास पहले अपने रूसी श्रम-संघों के महासंघ का सम्मेलन किया था जो कम्युनिस्ट पार्टी के एक अंग के रूप में था। रूस ने इसे विसर्जित किया और उसके स्थान पर एक दूसरे महासंघ का निर्माण किया तथा कहा कि यह नॉन-पोलिटिकल अर्थात् गैर राजनैतिक रहेगा। कहा कि यह किसी भी राजनैतिक पार्टी के किसी मोर्चा के रूप में नहीं रहेगा। इस सम्बन्ध का एक प्रस्ताव भी पारित किया गया। यह ध्यान में रखने की बात है कि जो कुछ हम लोग पहले से मानते थे और हमारी जिस भूमिका को सभी लोग हमारा पागलपन मानते थे उसी को आज विश्व मानने लगा है। अपने प्रवास का यह एक पड़ाव है, एक बिन्दु है। जिस प्रकार से भारतीय मजदूर संघ की संगठनात्मक रचना हुई है, उसमें इतने कार्यकर्त्ताओं की रचना हुई है, ऐसी रचना और कितने संगठनों की हुई है—यह एक खोज का विषय होगा।

दूसरा पड़ाव : पहले कार्य, बाद में ढाँचा

साधारणत: ऐसा होता है कि किसी संस्था की स्थापना करनी है, तो पहले अखिल भारतीय समिति बन जाती है, बाद में उसकी शाखाएँ निकलती हैं। परन्तु हमारे यहाँ जब 23 जुलाई, 1955 को घोषणा हुई कि हम भारतीय मजदूर संघ की स्थापना कर रहे हैं तब अखिल भारतीय समिति नहीं बनी, यहाँ तक कि प्रादेशिक समिति भी नहीं बनी। अलग-अलग जगह स्थानीय स्तर पर छोटी-छोटी यूनियनें मात्र प्रारम्भ हुईं। नया आदमी जब व्यवसाय करना चाहता है तो उसके पास पैसा नहीं रहता और इसलिए वह बड़ा कारखाना नहीं खोलता। पान-बीड़ी की दुकान खोलता है, सड़क के किनारे चाय की दुकान खोलता है, वैसे ही छोटी-छोटी यूनियनें—जैसे दुकान मजदूर संघ, रिक्शा मजदूर संघ, आदि हमने भी खोल दीं। फिर आगे बढ़ते हुए धीरे-धीरे प्रांतीय महासंघ, फिर औद्योगिक महासंघ बाद में कुछ प्रांतीय समिति, फिर अखिल भारतीय औद्योगिक महासंघ, और इसके बारह साल बाद अखिल भारतीय अधिवेशन और पश्चात् अखिल भारतीय समिति का निर्माण हुआ। माने अखिल भारतीय संस्था का निर्माण एवं उसकी घोषणा तथा प्रत्यक्ष अखिल भारतीय समिति का गठन इन दोनों में बारह साल का अन्तर रहा। क्या ऐसा किसी और संस्था के बारे में हुआ है? यह भी एक खोज का विषय है।

तृतीय पड़ाव : समिति, पदाधिकारी बाद में

तब बड़ी विचित्र स्थिति थी। सरकार या मालिकों के साथ वार्ता के लिए भारतीय मजदूर संघ की ओर से हमें जाना पड़ता था। उस समय हम अपने आप को कहते थे—जनरल सेक्रेटरी (महामंत्री) भारतीय मजदूर संघ पर वह था कहाँ? जनरल सेक्रेटरी तब होगा जब अखिल भारतीय समिति हो। परन्तु ऐसी कोई समिति थी नहीं। बारह साल के बाद यह समिति बनी। मेरा ख्याल है कि इस तरह का यह प्रवास संभवत: मात्र हमारा ही है, भारतीय मजदूर संघ को छोड़कर और किसी का नहीं।

चौथा पड़ाव : राष्ट्र हित का प्रश्न

यह भी एक बड़ी समस्या थी कि राष्ट्रवाद, राष्ट्र, राष्ट्रीयता, और—भारत माता इन शब्दों के प्रति तथाकथित प्रगतिशील लोगों के मन में बड़ी चिढ़ थी उनको इन शब्दों से परहेज था। हम भारतमाता की जय जब कहते तो कथित बड़े-बड़े प्रगतिशील नेता कहते थे कि इस नारे का या इन शब्दों का यहाँ क्या प्रयोजन है? यहाँ तो बोनस, मंहगाई भत्ता, वेतन वृद्धि आदि का सवाल है। भारतमाता को यहाँ क्यों घसीट कर लाते हो? नारे भी अलग ही लगते थे। उसका पूरा

विवरण देने की आवश्यकता नहीं। आप तो पुराने लोग हैं। हमारे 'बड़े भाई' जी, ने (श्री रामनरेश सिंह) इसका विस्तृत और अच्छा वर्णन किया है कि "चाहे जो मजबूरी हो, माँग हमारी पूरी हो।" इसके स्थान पर इसके विपरीत हमारा नारा है कि "देश के हित में करेंगे काम। काम का लेंगे पूरा दाम।" याने राष्ट्रवाद को प्रखरता से यहाँ लाना और राष्ट्र हित की चौखट में रहकर मजदूरों का हित करना—यह हमारा ध्येय है। हमारी प्राथमिकता का क्रम है कि पहले राष्ट्रहित, बाद में मजदूर हित और अंत में भारतीय मजदूर संघ का हित। इसमें कोई संस्थागत अहंकार नहीं। राष्ट्र का कल्याण हो, मजदूरों का कल्याण हो, यह हमारा सिद्धान्त है, लक्ष्य है। आखिर राष्ट्र का हित और मजदूरों का हित एक ही दिशा में जाने वाला है। संस्थागत अहंकार न रखते हुए, इस प्रकार की श्रद्धा से काम करने वाला राष्ट्र और मजदूरों के कल्याण का यही एक साधन है, माध्यम है। यह सोचकर काम करने वाला मजदूर संगठन, यही अपनी विशेषता है। उन दिनों बहुत अधिक टीका-टिप्पणी होती थी। आप में से सफेद बालों वाले जो पुराने लोग यहाँ हैं वे यह सब जानते हैं। लोग हमारे बारे में कहते थे कि ये दकियानूसी बातें करते हैं। "भारतमाता" वगैरह कहने की क्या आवश्यकता है? लेकिन आज इंटक, सीटू, एटक सभी भारतमाता की बात करते हैं। राष्ट्रवाद की भी बात करते हैं। राष्ट्र के लिए त्याग करने की बात भी कम्युनिस्ट बोलने लगे हैं। शायद यह उनकी रणनीति (स्ट्रटेजी)—का अंग हो। या हो सकता है कि वे हृदय से ही बोलते हों या फिर परिस्थिति के दबाव के कारण उन्हें बोलना पड़ रहा है। तात्पर्य यह है कि तब और अब में यह भी अन्तर है कि राष्ट्रवाद की बातों से जहाँ लोगों को परहेज होता था, चिढ़ होती थी, अब यह बात सबके गले उतर चुकी है।

पाँचवाँ पड़ाव : बोनस की बात

फिर औद्योगिक क्षेत्र की भी कई ऐसी चीजें हैं जिनका उद्घोष प्रथम भारतीय मजदूर संघ ने ही किया। उस समय भी लोगों ने हमारी खिल्ली उड़ाई। ऐसी कई बातें हैं, पर मैं एक दो उदाहरण यहाँ देता हूँ।

बोनस की बात थी। हमने कहा बोनस सबको मिलना चाहिए। ऐसा जब कहा गया तो सरकारी कर्मचारियों के कम्युनिस्ट नेताओं ने कहा कि ये मजदूर संघ वाले कैसी बेतुकी बातें करते हैं? यानि हम उनके लिए बोनस माँग रहे थे और वे कह रहे थे कि हमें बोनस कैसे मिल सकता है? हमने कहा कि बोनस 'डेफर्ड वेज' है। अर्थात् यह विलम्ब से दिया हुआ वेतन है। जब तक किसी कर्मचारी को मिलने वाले वेतन एवं जीने के लिए आवश्यक वेतन—दोनों में अन्तर है, तब तक बोनस को विलम्ब से दिया हुआ वेतन ही माना जाएगा। परन्तु यह बात उस समय किसी के पल्ले नहीं पड़ी। लेकिन आज सरकारी कर्मचारियों को

भी बोनस मिल रहा है और हमारी जो बोनस की परिभाषा थी वह भी आज सब लोग मान रहे हैं। जिस परिभाषा को पहले सबने बचकाना कहा, आज सबने उसी को स्वीकार किया है।

छठा पड़ाव : वार्ता के तीन पक्ष

दूसरा भी उदाहरण है। मजदूरों की समस्या के लिए वार्ता के समय मान्यता (रेकगनीशन) के बारे में हमने एक कल्पना, एक विचार दिया था। हमने कहा था कि वार्ता के समय "कंपोजिट बारगेनिग एजेंसी" होनी चाहिए। अर्थात् वार्ता में तीनों पक्षों का—सरकार, मालिक एवं सभी श्रमिक संगठन (ट्रेड यूनियन्स) का रहना आवश्यक है। उस समय सभी लोगों ने कहा कि यह व्यवहारिक कैसे हो सकता है? लेकिन 1977 में जनता सरकार आने के पश्चात् श्री रविन्द्र वर्मा जो श्रममंत्री थे, उन्होंने इस सिद्धान्त को लागू किया। भेल (बी.एच.ई.एल.) में इसका प्रयोग हुआ और ठीक ढंग से चला। अब आज यह मान्यता दिखाई देती है कि यह प्रयोग भी चल सकता है। इसका भी प्रथम सूत्रपात भारतीय मजदूर संघ ने किया। इस तरह औद्योगिक क्षेत्र की कई छोटी-बड़ी बातें हैं जिनका प्रथम सूत्रपात भारतीय मजदूर संघ ने किया।

सातवाँ पड़ाव : उद्योग के स्वामित्व के प्रकार

और एक बात। हम सब जानते हैं कि कम्युनिस्टों ने यह भ्रांति फैला रखी थी कि उद्योग के स्वामित्व के दो ही प्रकार हो सकते हैं—या तो उद्योगों का राष्ट्रीयकरण याने उद्योग सरकारी हो या पूंजीपतियों के हाथ में उद्योग रहे। इसे वे 'प्रायवेट एन्टरप्राइज' कहते थे। उनका कहना था कि ये दो ही विकल्प हो सकते हैं, तीसरा नहीं। इस सम्बन्ध में भी भारतीय मजदूर संघ ने ही सर्वप्रथम जोर देकर कहा कि नहीं, आपके विचार में भ्रांति है। उद्योगों के स्वामित्व के कई भिन्न-भिन्न और प्रकार भी हो सकते हैं। कम्युनिस्ट राष्ट्रीयकरण को हर चीज का रामबाण उपाय मानते थे। हमने कहा कि यह भी भ्रांति है। राष्ट्रीयकरण हर बात का रामबाण इलाज नहीं हो सकता। कभी परिस्थितिवश उसे एकाध बार अपरिहार्य बुराई के रूप में स्वीकार करना पड़े, जैसे हम कड़वी दवा लेते हैं, उस तरह। लेकिन उद्योग के स्वामित्व के कई और प्रकार भी हो सकते हैं। जैसे कोऑपरेटिव्हायजेशन, म्युनिसिपलाईजेशन, डेमोक्रॅटाईजेशन, सेल्फ इम्प्लायमेन्ट, ज्वॉइंट सेक्टर, आदि कई प्रकार हो सकते हैं। याने सहयोगिता, स्वायत्तशासी, लोकतांत्रिक आधार, स्वरोजगार, संयुक्त स्वामित्व, आदि भी उद्योग के स्वामित्व का आधार हो सकते हैं और किस उद्योग को स्वामित्व के किस ढांचे में डालना चाहिए यह तय करने के लिये सरकार "नेशनल कमिशन फॉर दि पैटर्न ऑफ ओनरशिप ऑफ दि इंडस्ट्रीज" जैसी कोई समिति नियुक्त करे।

अर्थात् सरकार एक प्राधिकरण या आयोग नियुक्त करे जो उद्योगों के स्वामित्व की अलग-अलग श्रेणियाँ निश्चित करे। यह आयोग ही यह निश्चित करे कि कौन-सा उद्योग स्वामित्व के उपरोक्त किस प्रकार के ढाँचे के अन्तर्गत रहे। यह निश्चित करने की कसौटी भिन्न-भिन्न एवं विविध होनी चाहिए। ऐसा करते समय आयोग दो बातों पर विचार करे। एक तो उद्योग की विशेषताएँ और दूसरी बात देश की अर्थ-व्यवस्था को मद्देनजर रखते हुए उसकी आवश्यकताएँ। (स्पेशल कॅरेक्टरिस्टिक्स ऑफ ईच इंडस्ट्री अँड टोटल रिक्वायरमेंट ऑफ नेशनल इकॉनॉमी) ये दोनों विचार एक साथ करने पर ही उद्योगों को स्वामित्व के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में डाला जाय।

तो किस उद्योग को स्वामित्व के किस ढाँचे में डाला जाय यह देखने के लिए एक राष्ट्रीय आयोग नियुक्त होना चाहिए यह बात भी हमने ही सर्वप्रथम कही। 1969 में तत्कालीन राष्ट्रपति महोदय को हमने जो "चार्टर आफ डिमांड्स, डयूटीज अँड डिसिप्लिन्स" (माँग, कर्त्तव्य एवं अनुशासन का माँग पत्र) दिया था, उसमें इस बात का उल्लेख है।

आश्चर्य है कि अब भी यह भ्रांति है कि बीमार उद्योग (सिक मिल्स) का क्या होगा? सरकार ने यदि कुछ उद्योग छोड़ दिए तो उसका निजीकरण (प्राईवेटाईजेशन) ही होना चाहिए—ऐसा लोग सोचते हैं। चर्चा यही चली कि निजीकरण हो या न हो। यानि इतने साल के बाद आज भी यह भ्रांति है कि निजीकरण छोड़कर और कोई विकल्प ही नहीं है। यद्यपि कम्युनिस्ट कहते हैं कि राष्ट्रीयकरण ही सब चीजों का रामबाण उपाय है, लेकिन वे निजीकरण की भी बात बोलते हैं। राष्ट्रीयकरण को हमने कभी इस तरह रामबाण उपाय नहीं माना। किन्तु हमारा विचार है कि श्रमिकीकरण भी स्वामित्व का एक प्रमुख प्रकार हो सकता है। स्वामित्व के और भी अलग-अलग प्रकार हैं। हर स्वामित्व के प्रकार में श्रमिकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होनी चाहिए। भले ही उसकी मात्रा, उसका प्रमाण, अलग-अलग उद्योगों में अलग-अलग हो सकता है।

जैसे पैसे का स्वामित्व है वैसे ही पसीने का हो। पसीना भी उद्योग की पूँजी का एक अंग है और इस दृष्टि से जैसे पैसा देने वाले वैसा ही पसीना बहाने वाला भी अपने उद्योग का भागीदार है। और इस कारण पसीना बहाने वाले भागीगार को भी उद्योग का स्वामी—मालिक मानना चाहिए। परन्तु दुर्भाग्य है कि शेष सारे लोग अब तक मात्र "उद्योग व्यवस्थापन में साझेदारी" तक ही पहुँचे हैं। इसके उस पार कोई नहीं गया। लेकिन प्रारम्भ से हम कहते रहे हैं कि मजदूरों की साझेदारी मात्र व्यवस्थापन में नहीं, मिलकियत में भी होनी चाहिये।

जब राष्ट्रीयकरण किए हुए उद्योगों में से कोई उद्योग सरकार छोड़ती है तो उस उद्योग का निजीकरण हो अथवा न हो, इस पर जब चर्चा शुरू हुई तो हमने कहा कि और भी विकल्प हो सकते हैं तथा श्रमिकीकरण भी उनमें से एक बिकल्प

है। संयोग की बात है कि पश्चिम बंगाल की मार्क्सवादी सरकार ने वहाँ के भारतीय मजदूर संघ के लोगों से पूछा कि यह तुम्हारा "श्रमिकीकरण" क्या है ? न्यू सेन्ट्रल ज्यूट उद्योग का विचार चल रहा था। पूँछे जाने पर अपने वहाँ के कार्यकर्त्ता श्री बैजनाथ राय एडवोकेट ने काफी अध्ययन करते हुए एक योजना सरकार के सामने रखी। कुछ चर्चा हुई और यह योजना लागू करने की बात भी सोची गई। न्यू सेंट्रल ज्यूट मिल में वह योजना लागू हो गई। इस योजना में अन्य श्रम संगठनों को भी शामिल किया गया। **लेकिन यह योजना भारतीय मजदूर संघ की ही रही**। अब वह न्यू सेन्ट्रल ज्यूट मिल ठीक ढंग से चल रही है। गत 29 नवम्बर, 1991 को वहाँ हड़ताल भी नहीं हुई, ऐसा कल बताया गया। तो इस तरह मार्क्सवादी सरकार को भी हम लोगों से श्रमिकीकरण के बारे में बाध्य होकर पूँछना पड़ा। और अभी हाल ही में जो त्रिपक्षीय वार्ता हुई, जो टी.वी. पर भी दिखाई गई, उसमें श्रममंत्री श्री संगमा ने कहा कि उद्योग को श्रमिकों की कोऑपरेटिव्हज के हाथों में भी सौंपा जा सकता है। यह बात अलग है कि सरकार इसमें से कितना करेगी। लेकिन सिद्धान्त के रूप में सरकार को भी इसे बाध्य होकर स्वीकार करना पड़ा। पहले तो इसकी भी बहुत खिल्ली उड़ाई जाती थी। श्रमिकीकरण का काफी विरोध होता था। श्री भगत जी ने जब त्रिपक्षीय समिति में वार्ता के समय श्रमिकों की कॉआपरेटिव्हज की बात रखी तो सीटू ने उसका विरोध किया। उसने कहा कि यह विचार हमें मंजूर नहीं। श्रम मंत्री श्री संगमा जी ने कहा कि हम इसका स्वागत करते हैं। पहले तो घोर विरोध था। "भारतीय श्रम सम्मेलन" (इंडियन लेबर कॉन्फरेन्स) जब बारह साल बाद हुई, उसमें अपने (स्वर्गीय) मनहर भाई मेहता का भाषण हो रहा था। उन्होंने जब श्रमिकीकरण शब्द का उल्लेख किया तो आयटक की उपाध्यक्षा पार्वतीकृष्णन अपने लोगों से बोलने लगी कि मालूम होता है कि ये बी.एम.एस. वालों का लेबराईजेशन (श्रमिकीकरण) हम लोगों को लेकर डूबने वाला है। तात्पर्य यह है कि पहले जिसे लोग अव्यावहारिक समझते थे, उसे अब शासकीय स्तर पर भी सिद्धान्त रूप में मानना पड़ा है और मार्क्सवादी सरकार ने भी एक स्थान पर उसे व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया है।

पश्चिम बंगाल में न्यू सेन्ट्रल ज्यूट मिल का प्रयोग चल रहा है वह सरकार के नाते चल रहा है, और सीटू इसका जो विरोध कर रही है वह ट्रेड यूनियन के नाते कर रही है। उनका यह जो अन्तर्विरोध है, इसे छोड़ दें। लेकिन प्रगति हुई है यह बात सत्य है। अब तो काफी कम्युनिस्ट देशों में भी इसे लिबरलायजेशन (उदारता) के नाम पर लागू हुआ देखा जा सकता है।

आठवाँ पड़ाव : विश्वकर्मा सेक्टर

हम लोग विश्वकर्मा सेक्टर की बात करते थे। हम कहते थे कि स्वरोजगार, देशी कारीगर, बढ़ई, लुहार, चर्मकार ये विश्वकर्मा सेक्टर हैं। तो हमारे कम्युनिस्ट

लेकिन हम जरा देखें कि आज आर्थिक गुलामी का विरोध विश्वनाथ प्रताप सिंह जैसे लोग भी कर रहे हैं । अब गम्भीरता की भी हद होती है । जब यह वित्त मंत्री थे तब इन्हीं विश्वनाथ प्रताप सिंह ने आर्थिक गुलामी लाने वाले निर्णय लिए थे । आर्थिक गुलामी यह कोई नई बात नहीं है । 1965 में पाकिस्तान के साथ नहर के पानी के बँटवारे के बारे में जो समझौता हुआ था वह प्रतिकूल एवं अन्याय पूर्ण होने के बाद भी सरकार ने विदेशी पूँजी के दबाव में स्वीकार किया था । उस समय प० पू० श्री गुरुजी ने चेतावनी दी थी कि जागतिक बैंक के दबाव में यह जो समझौता आप स्वीकार कर रहे हो तो यही प्रवृत्ति यदि सरकार की रही तो अपने देश में आर्थिक गुलामी आऐगी । आर्थिक गुलामी लाने में सहायक विश्वनाथ प्रताप सिंह आज जब सत्ता से बाहर विपक्ष में हैं तो एकदम देशभक्त बनकर आर्थिक स्वतन्त्रता लाने के लिए युद्ध की बात कर रहे हैं । आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए युद्ध (Second war of Independence) शब्द का प्रयोग सबसे पहले भारतीय मजदूर संघ के मंच से हुआ है यह बात हम विनम्रता पूर्वक कह सकते हैं ।

इस शब्द का प्रयोग भारतीय मजदूर संघ को छोड़कर और किसी ने आज तक किया नहीं है । लेकिन आज यह सभी देशभक्त बन रहे हैं । वामपंथियों के लिए तो बहुत जिम्मेदारी से बात करना इसका कोई परहेज नहीं है । जिस समय जो बात बोलने से लोकप्रियता मिले वह बात बोलने में उनको कोई संकोच नहीं होता है । आर्थिक गुलामी के बारे में वामपंथियों ने कभी गहराई से अध्ययन किया ही नहीं है ।

आर्थिक गुलामी के बारे में वामपंथियों ने पहले कभी कोई अभियान लिया हो—ऐसा दिखता नहीं । कोई भी चीज अच्छी हो सकती है । बांस की एक करची भी सरकार बनाने के लिए पर्याप्त है, ऐसी ही बातें वे करते थे । परन्तु हमें अपनी जिम्मेदारी का ध्यान था । देशभक्ति की भावना का विचार करते हुए सबसे पहले "स्वदेशी आन्दोलन" की चेतावनी परमपूज्य श्री गुरूजी ने ही दी थी । उनकी यह चेतावनी सार्वजनिक जीवन और मजदूर क्षेत्र दोनों के लिए ही थी । और मजदूर संगठन का विचार करें तो सर्वप्रथम भारतीय मजदूर संघ ने ही "स्वदेशी आन्दोलन" का यह नारा लगाया । अब आज सभी लोग इसी नारे को दोहराते दिखाई दे रहे हैं । यहाँ तक कि परमपूजनीय सरसंघचालक जी के इस सम्बन्ध के वक्तव्य का समर्थन भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री चन्द्रशेखर जी ने भी किया । उन्होंने तो अपनी प्रेस कांन्फरेंस में ही यह वक्तव्य पढ़कर सुनाया । हाँ ! यह बात अलग है कि इसके पीछे उनका राजनीतिक उद्देश्य है । इसके पीछे कोई सद्भावना नहीं है । संघ परिवार में आपस में कुछ झगड़ा खड़ा किया जाय इसी हेतु से उन्होंने यह किया है । परन्तु यह तो सत्य है कि उस समय हमारी

यह बात सबको उपेक्षणीय लगती थी, आज सबकी अनुभूति और अनुभव यही है कि वह बात ठीक थी। भारतीय मजदूर संघ की दृष्टि से यह भी एक बड़ी वैचारिक विजय है। हम यह समझ सकते हैं।

दसवाँ पड़ाव : तकनीक का आयात

ऐसी ही दूसरी बात थी कि हमें उस सिलसिले में दकियानूसी कहा गया। तकनीक के विषय में दो प्रवाह चल रहे थे। एक प्रवाह था कि विदेशी तकनीक पूर्ण रूप से (लॉक, स्टॉक अँड बैरल) अपने देश में लाना चाहिए और दूसरा प्रवाह था जिसे गलती से गाँधीवादी प्रवाह कहा गया, यद्यपि गाँधी जी की ऐसी कोई चरम सीमा की भूमिका नहीं थी। किन्तु गाँधी जी ने जो कुछ कहा वह सर्वोदयी लोगों के समझ में न आने के कारण, उन्होंने दूसरी चरम सीमा की भूमिका अपनाई, जो भी नई बात दिखाई दे, उसका पूर्णतः बहिष्कार करना, यह बात इसी में से निकली और यह एक गलत भावना गाँधी जी के नाम पर चली।

हम लोगों ने कहा कि तकनीक के बारे में ये चरम सीमा की दोनों भूमिकाएँ गलत हैं। अपने देश की परिस्थिति अलग है, विदेशों की परिस्थिति उससे भिन्न है, अतः वहाँ का पूरा तकनीक यहाँ उठा लाना एकदम गलत है। यहाँ जनसंख्या अधिक है और उसमें काम करने वाले लोग भी अधिक हैं, बेरोजगार भी अधिक हैं, और काम का अवसर या आयाम भी कम है। इसके विपरीत विदेशों में काम करने वालों की संख्या कम है। उनकी आवश्यकताएं अधिक हैं और उनकी जेब में पैसा भी अधिक है। अपने यहाँ सबसे बड़ा कारण बेकारी का है। ज्यादा से ज्यादा लोगों को काम कैसे दिया जाय यह सवाल है। इसी अन्तर के कारण गाँधी जी ने कहा था कि **"हमें अधिक उत्पादन नहीं चाहिए, अधिक लोगों द्वारा किया गया उत्पादन चाहिये" (नॉट मास प्राडक्शन बट प्रॉडक्शन बाय मासेस)।**

इसका विचार होना चाहिए और इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि विश्व भर में जितना भी नया तकनीक होगा, उसका अध्ययन हमारे तकनीक-विशेषज्ञ करें। लेकिन इस अध्ययन के समय और उस आधार पर निर्णय लेते समय हमारी अपनी परम्पराएँ, हमारी परिस्थितियाँ और आवश्यकताएँ, तथा हमारी आकांक्षाएँ– इन तीनों का ध्यान रखना होगा। इसके अतिरिक्त एक और महत्व का विचार करना होगा। चार बातें हैं—

1. ऐसा विदेशी तकनीक कौन सा है कि जिससे लाभ होगा, और उसे यहाँ अपनाया जा सकेगा। अंग्रेजी में इसे अडॉप्ट (To adopt) कहते हैं।
2. विदेशी तकनीक का ऐसा हिस्सा कौन सा है कि जिसे उसी प्रकार नहीं, लेकिन उसमें कुछ बदल (मॉडीफाई) करते हुए उसे अपनाया जाय, जिससे देश का कल्याण हो सके। अंग्रेजी में इसे ॲडाप्ट (To adapt) कहते हैं।
3. विदेशी तकनीक का ऐसा हिस्सा कौन सा है कि जो हमारी परिस्थिति के

अनुकूल नहीं और इस कारण उससे बहुत नुकसान होगा, अतः उसे अस्वीकार (रिजेक्ट) किया जाय ।

4. दस्तकारी या कारीगरी जैसे हमारे जो गृह उद्योग हैं, उनके लिए विदेशों में तकनीक का निर्माण नहीं हो सकेगा । अतः भारत में ही उस के लिए उपयोगी ऐसा कोई नया तकनीक खोजा जाना चाहिए, कि जिससे इस दस्तकारी के वर्तमान साधन पूर्णतः नष्ट न हों तथा आज के हमारे कारीगर भी बेकार न हो जाएँ । इन कारीगरों को रोजगार मिलना चाहिए, उनकी कारीगरी के वर्तमान साधनों में थोड़ा बदल भी होना चाहिए, तथा वह बदल उन कारीगरों की समझ में आना चाहिए । दस्तकारी के सम्बन्ध में यह विचार करने के साथ-साथ यह भी ध्यान में रखना होगा कि उपरोक्त तीन बिन्दुओं के आधार पर इसका भी विचार हो । और यह सब कुछ निश्चित करने के लिए **"राष्ट्रीय तकनीक नीति" (नेशनल-टेकनॉलॉजिकल पॉलिसी)** बननी चाहिए । फिर उस नीति के प्रकाश में अलग-अलग उद्योगों का विचार हो आज ऐसी कोई नीति है ही नहीं । लोग यह मानते-समझते हैं कि तकनीक या तकनीकि का सवाल मात्र मालिक और मजदूरों के बीच का प्रश्न है पर ऐसा नहीं है । नई तकनीक याने एक तरह से नई संस्कृति ही है । सब कुछ नई रचना है । तो इस सिलसिले में "राष्ट्रीय तकनीक नीति" की माँग करने वाला पहला संगठन भारतीय मजदूर संघ ही है, दूसरा कोई नहीं । आज सब लोग इसका अनुभव कर रहे हैं ।

ग्यारहवाँ पड़ाव : कम्प्यूटरीकरण

लेकिन जब हम लोगों ने यह माँग रखी तो सबने विरोध ही किया । अपनी बैंकों की यूनियनों के महासंघ ("नेशनल ऑर्गनाईजेशन आफ बैंक वर्कर्स"—एन.ओ.बी.डब्ल्यू.) ने जब यह माँग रखी तो मालिकों ने, व्यवस्थापकों ने, AIBEA (कम्युनिस्ट संगठन) ने कहा कि आप आज यदि कम्प्यूटरायजेशन के समझौते पर हस्ताक्षर करोगे तो हम आपको मान्यता दे देंगे । आपकी कुछ सुनेंगे और वेतन सम्बन्धी बातचीत में आपको भी शामिल करेंगे, अन्यथा नहीं करेंगे । यह भी कहा कि यदि हस्ताक्षर नहीं करोगे तब तुम अकेले पड़ जाओगे ।

इस पर हमारे एन.ओ.बी.डब्ल्यू. के लोगों ने कहा कि—"कोई आपत्ति नहीं । हम अकेले पड़े तो भी हर्ज नहीं । हम अकेले ही चलते रहेंगे, किन्तु मजदूरों के साथ गद्दारी नहीं करेंगे ।" और इसके बावजूद कम्युनिस्टों से जब पूछा गया कि एन.ओ.बी.डब्ल्यू. वालों ने समझौते पर हस्ताक्षर क्यों नहीं किये तो उन्होंने कहा कि हस्ताक्षर न करने वाले यह लोग दकियानूसी हैं । ए.आय.बी.ई.ए.

(कम्युनिस्ट संगठन) ने भी यही कहा। वे बोले कि इन मजदूर संघ वालों को पता ही नहीं है कि दुनिया किधर जा रही है और ये बी.एम.एस. वाले हिन्दुस्तान को सोलहवीं शताब्दी में ले जाना चाहते हैं। इसी कारण यह लोग कम्प्यूटरीकरण के तकनीक का विरोध कर रहे हैं।

वस्तुतः हमने कम्प्यूटरीकरण के बारे में कहा था कि हम अंधाधुंध कम्प्यूटरीकरण के पक्ष में नहीं है। अविवेकपूर्ण कम्प्यूटरीकरण का हम विरोध करते हैं। हमने तो तकनीक के आयात के बारे में चार बातें पहले ही कहीं थीं कि नये तकनीक को वैसे के वैसे लेना या कुछ बदल करते हुये लेना, अस्वीकार करना और यहाँ के लिए उपयुक्त तकनीक का आविष्कार करना (अॅडोप्ट, अडाप्ट, रिजेक्ट अँड इनोव्हेट) इसका योग्य विचार होना चाहिए। किन्तु इस बात को गलत ढंग से प्रस्तुत करते हुए कम्युनिस्टों ने कहा कि ये बी.एम.एस. वाले हिन्दुस्तान को सोलहवीं शताब्दी में ले जा रहे हैं। इसलिए उन्होंने हस्ताक्षर नहीं किए। बाद में कम्युनिस्टों की यूनियन के सभी बड़े या छोटे कार्यकर्त्ताओं का उन पर दबाव आया कि कम्प्यूटरीकरण का विरोध करना ही चाहिए। ए.आय.बी.ई.ए. के लोगों पर भी ऐसा ही दबाव आया। बाद में दिल्ली में जब सबकी सामूहिक मीटिंग हुई तब उसमें कम्युनिस्टों ने भी कहा कि अंधाधुंध कम्प्यूटरीकरण का हम विरोध करते हैं। और ए.आय.बी.ई.ए. वालों की तो हालत ही खराब हो गई। उन्होंने कहा कि हम फँस गए हैं, हमने तो पहले ही हस्ताक्षर कर दिए हैं। मालिकों ने हमें गुमराह किया था इस कारण हमने हस्ताक्षर किए। लेकिन अब हमें अपनी गलती समझ में आ गई है। यानि हमें कोसने वालों को भी अपनी गलती सार्वजनिक रूप से स्वीकार करनी पड़ी। परन्तु यह बात तो सिद्ध हुई कि तकनीकी के सवाल पर गहराई में जाकर ठीक विचार भारतीय मजदूर संघ ने ही किया है। मैं समझता हूँ कि "वैचारिक विजय" इस नाते हमारे लिए यह बात बहुत महत्व की है।

बारहवाँ पड़ाव : साम्यवाद का खातमा

सबसे बड़ी बात यह है कि जिस समय हमने काम शुरू किया, कम्युनिस्टों का लाल झण्डा चारों तरफ मजदूर क्षेत्र में—यहाँ अपने देश में और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लहराता था। पर प्रारम्भ से ही भारतीय मजदूर संघ ने कहा कि कम्युनिजम के बारे में अधिक चिंता करने की आवश्यकता नहीं। भारतीय मजदूर संघ की स्थापना कम्युनिजम का विरोध करने हेतु नहीं की गई। हमें तो राष्ट्र का पुनर्निर्माण करना है। भारतीय मजदूर संघ उसका एक माध्यम है इसलिये भारतीय मजदूर संघ में आना चाहिए। कम्युनिजम नष्ट हो ऐसी जिनकी इच्छा है वे कंबल लेकर सो जाएँ। कम्युनिजम तो अपने ही अन्तर्विरोधों के बोझ के नीचे दब कर खत्म होने वाला है और हमने यह बात तब कही कि जब इस पर कोई विश्वास ही नहीं करता था। लोग हमें भी कहते थे कि "ठेंगड़ी जी ! आप पर

तो हमारा विश्वास है लेकिन आपकी बात कुछ अधिक ही लगती है।" परन्तु आज वह बात प्रत्यक्ष में आ गई है। उसका विवरण देने की आवश्यकता नहीं है। अब तो यह मुश्किल है कि लोग एकदम दूसरे सिरे पर जा रहे हैं, समझ रहे हैं कि कम्युनिजम खत्म हो चुका है। पहले सोचते थे कि कम्युनिजम खत्म नहीं हो सकता और अब सोचते हैं कि वह एकदम खत्म हो गया है। वे यह समझते नहीं कि कोई भी बात एकदम खत्म नहीं होती। किसी भवन के निर्माण में 100–150 साल लगे हों, वह टूटने लगे तो पूरा टूटने के लिए थोड़ा समय तो लगता ही है और फिर दूसरी बात यह है कि हरेक विचारधारा के बारे में दो तरह से सोचना चाहिए। विचारधारा के नाते और विचारधारा से निर्मित प्रभाव के बारे में। विचारधारा की वैचारिक पराजय होने के बाद भी उसका लोगों पर हुआ प्रभाव तुरन्त समाप्त नहीं होता। वह बना रहता है, क्योंकि निजी स्वार्थ के चलते कुछ लोग उस प्रभाव की लीक पकड़ कर ही चलते रहते हैं। ऐसे लोग जब तक रहेंगे, तब तक प्रभाव के रूप में, उसकी छाया के रूप में, विचारधारा जीवित होने का आभास बना रहेगा। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वह विचारधारा जीवित है, केवल निर्मित प्रभाव शेष है। पश्चिम बंगाल का ही उदाहरण लें। क्या कोई कम्युनिस्ट अपने हृदय पर हाथ रख कर यह कह सकता है कि पश्चिम बंगाल में कम्युनिजम है या केवल उसका प्रभाव शेष है? वहाँ मुख्यमंत्री ज्योतिबसु की हरेक नीति घोर मजदूर विरोधी है। जो बात केन्द्र की सरकार कहती है वही बात ज्योतिबसु कहते हैं। पूंजीपतियों के साथ उनकीसांठ-गांठ है। सीटू और सी.पी.एम. विदेशी साम्राज्यवाद के विरोध की घोषणा करते हैं और उधर बंगाल में उसी समय पूंजीवादी अर्थव्यवस्था चला रहे हैं। साईन बोर्ड तो कम्युनिजम का है पर प्रत्यक्ष में क्या है? जैसे दिल्ली में 1947 से आज तक जितनी भी सरकारें आईं, भले ही वे कांग्रेस की हो, गैर कांग्रेसी हो, सबका साइन बोर्ड "गाँधीवाद" का था। परन्तु क्या सत्य में कोई गाँधीवादी सरकार थी? वे तो ऐसी नीतियाँ लेकर चले कि मानों वे गाँधी जी के कट्टर दुश्मन हों। तो दिल्ली में जितना गाँधीवाद है, उतना और वैसा ही कलकत्ते में साम्य-वाद (कम्युनिजम) है, केवल साइन बोर्ड है। यह विचारधारा का झूठा स्वांग रचकर चलने की बात है।

और जहाँ तक विचारधारा के प्रभाव को पकड़कर चलने वाले स्वार्थी तत्वों की बात है, उसका भी उदाहरण है। जैसे हिन्दू महासभा है। क्या कोई बता सकता है कि यह जीवित है या नहीं? एक तरह से देखा जाय तो उसका कुछ भी शेष नहीं। परन्तु जब तक हिन्दू महासभा भवन है, उसकी सम्पत्ति है, बैंक में जमा राशि है, तब तक कोई ना कोई इसी के सहारे हिन्दू महासभा जीवित होने की बात करेगा। उस आखरी व्यक्ति के समाप्त होने तक हिन्दू महासभा के अस्तित्व का आभास होता रहेगा। कोई भी बुद्धिमान आदमी इस सम्पत्ति और

बैंक में जमा धन को छोड़ेगा नहीं। यानि हिन्दू महासभा समाप्त है, पर उसकी वैचारिक छाप अभी जिन्दा है। ऐसी ही बात कम्युनिजम की है। दोनों परस्पर विरोधी सिरों पर जाकर एकदम अतिशयोक्ति की बात सोचना गलत है। पहले हर्षोन्माद से कहते थे कि एक तिहाई दुनिया पर लाल झण्डा लहरा रहा है और अब एकदम कहने लगे कि—बाप रे बाप, कम्युनिजम मर गया। हमें कम्युनिजम की समाप्ति का इस प्रकार से हर्षोन्माद नहीं होना चाहिए। उसकी कुछ जड़ें जब तक बाकी हैं उन्हें समाप्त होते-होते समय लगेगा। और तब तक हमें भी सावधान रहना पड़ेगा।

परन्तु प्रमुख बात यह है कि जब भारतीय मजदूर संघ ने पहली बार यह कहा कि कम्युनिजम अपने ही अन्तर्विरोध के बोझ से दब कर खत्म होगा, तब लोगों ने इस बात को शेख महम्मदी, पागलपन और न जाने क्या-क्या नहीं कहा। दूसरे किसी अन्य संगठन ने यह बात नहीं कही। केवल हमने यह कहा यह बात भी हमें ध्यान में रखनी चाहिए।

तेरहवाँ पड़ाव : शहादत

कई बातें हैं। छोटी बड़ी सभी बातों का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन यह निश्चित है कि हम जहाँ से निकले और आज जहाँ तक पहुँचे हैं, यह काफी समय में तय किया गया हमारा लम्बा प्रवास संतोषजनक है, ऐसा कहा जा सकता है। आपत्तियाँ बहुत आईं। यह कार्य का आज जो विकास दिखाई देता है, वह कोई गुलाब की सेज पर या मखमली गलीचे पर चलकर प्राप्त नहीं हुआ है। मुझे स्मरण है कि इन्दौर के अधिवेशन में एक सत्र हमने मात्र यह बताने के लिए रखा था कि भारतीय मजदूर संघ का कार्य करते-करते जो शहीद हुए उनका एवं उनके उद्योग का, उनकी यूनियन का विवरण प्राप्त हो। अस्सी मिनट तक यह कार्यक्रम चला। बहुत अधिक विस्तृत विवरण के लिए समय नहीं था। अत: दो तीन बिन्दुओं पर ही विवरण मांगा था। इसका अर्थ है कि अपने कार्य की यह वृद्धि मात्र शाब्दिक नहीं, व्यावहारिक है, प्रत्यक्ष है। मजदूरों ने, कार्यकर्त्ताओं ने अपना खून इसमें लगाया है। आत्म बलिदान और शहादत के आधार पर भारतीय मजदूर संघ का काम बढ़ा है। लेकिन जो काम बढ़ा है वह सन्तोषजनक है। वैचारिक क्षेत्र में पहले हम जो कुछ कहते थे, लोग उसका मजाक उड़ाते, हमें पागल कहते थे, हमारी खिल्ली उड़ाते थे। लेकिन आज वे ही लोग स्वीकार करने लगे हैं। अर्थ स्पष्ट है कि वैचारिक दृष्टि से, सैद्धांतिक दृष्टि से, संगठनात्मक दृष्टि से भारतीय मजदूर संघ प्रगति पथ पर है। प्रत्यक्ष शहादत छोड़ दें तो भी इसके लिए कितने लोगों को काम से हटाया गया, कितने परिवार बर्बाद हुए यह भी विचार करने की बात है। हमने इस सम्बन्ध में प्रारम्भ में ही कहा था कि अपना एक उद्देश्य यह भी है कि सामान्य मजदूर आबाद रहे इस

हेतु भारतीय मजदूर संघ के कार्यकर्त्ता बरबाद हों। हमने यह कहा था कि "दि बेस्ट शुड सफर, सो दैट दी रेस्ट मे प्रॉसपर"। अर्थात् दूसरों को सुखी बनाना है तो कुछ अच्छे लोगों को कष्ट सहना ही पड़ेगा। जरा विचार करें कि क्या ऐसा कोई दूसरा संगठन है ? हमने तो नारा ही दिया था कि "बी.एम.एस. की क्या पहचान, त्याग, तपस्या और बलिदान"। हमारे कथित प्रगतिशील लोग हम पर हंसते थे कि भाई मजदूर क्षेत्र में तो हम पैसे के लिये आते हैं, अधिक सुख-सुविधाओं की अपेक्षा से आते हैं लेकिन बी.एम.एस. के यह पागल लोग कहते हैं कि त्याग, तपस्या और बलिदान।

चौदहवाँ पड़ाव : परीक्षा की घड़ी

लेकिन परीक्षा आती है तो सबकी परख हो जाती है। आपातकाल में श्री ए.के. गोपालन को यह कहना पड़ा कि "अरे, हम आर.एम.एस. को राइट विंग ऑर्गनाईजेशन या राइटिस्ट (दक्षिण पंथी—पर्याय से निकम्मे) कहते थे लेकिन वे लोग हजारों की संख्या में सत्याग्रह के लिये सामने आये और हम अपने आपको कम्युनिस्ट होने के नाते क्रांतिकारी, आन्दोलनकारी (पर्याय से उग्रपंथी) मानते थे, इसी हेतु मजदूरों की संस्थाएँ चला रहे थे, उनकी आर्थिक लड़ाइयाँ लड़ रहे थे, और इस कारण यह भी हम सोचते थे कि लोग आन्दोलन में हमारा साथ देंगे, लेकिन प्रत्यक्ष में हम आर.एस.एस. वालों का दसवाँ हिस्सा भी जेल में नहीं भेज सके। इसका अन्वेषण करना चाहिए, इसका कारण खोजना चाहिए। हमें इस पर पुर्नविचार करना चाहिए।" ऐसा ए.के. गोपालन ने इमरजेंसी के समय कहा।

हमारे क्षेत्र में भी हमें ऐसा ही अनुभव आया। हमने सोचा कि आपातकाल का मुकाबला करने हेतु सभी श्रम संगठनों का एक सांझा मोर्चा हो। हम सबसे मिले। सभी ने कहा कि कोई बोनस का या ऐसा ही कोई जॉइंट स्टेटमेंट (संयुक्त वक्तव्य) दिया जा सकता है। सी.पी. रामास्वामी अय्यर रोड पर श्री राममूर्ति जी के यहाँ हम सब इकट्ठा बैठते थे। सभी भूमिगत थे लेकिन बारी-बारी से वहाँ जाते थे। वहाँ बोनस के बारे में संयुक्त वक्तव्य का मसौदा तैयार हुआ। सबके हस्ताक्षर इस वक्तव्य पर करने की बात आई। हमने सुझाव रखा कि हर संस्था का अध्यक्ष या महामन्त्री या कोई प्रमुख प्रतिनिधि इस पर हस्ताक्षर करे। परन्तु सीटू सहित हस्ताक्षर करने को कोई भी तैयार नहीं हुआ। सबने कहा कि हस्ताक्षर की क्या आवश्यकता है ? हमने कहा कि हस्ताक्षर के बिना इसकी सत्यता कैसे प्रमाणित होगी, इसकी प्रामाणिकता कैसे सिद्ध होगी ? तो कहने लगे कि यूं किया जाय कि मात्र अपने संगठनों के नाम दे देंगे। आयटक, सीटू, एच.एम.एस., बी.एम.एस. आदि। फिर भी हमने हस्ताक्षर पर जोर दिया तो बोलने लगे कि आपातकाल है, इसमें रणनीति के नाते ऐसा ही होना चाहिए। इसका अर्थ स्पष्ट है कि ये उग्रपंथी, आन्दोलनकारी और क्रांतिकारी कहलाने वाले परीक्षा की घड़ी

आने पर भाग खड़े होते हैं। उस समय भारतीय मजदूर संघ के साठ हजार मजदूरों ने साथ दिया और कानून तोड़ कर वे जेल गये। याने जब परीक्षा का समय आता है तो ध्येयवादी लोग मिलते कहाँ हैं ? भाषणबाजी तो सब कर लेते हैं। लेकिन लोगों में भावना कौन पैदा कर सकता है ? परीक्षा की कसौटी पर आपातकाल में भी भारतीय मजदूर संघ खरा उतर सका, वामपंथियों के कथित क्रांतिकारी संगठनों में से कोई भी खरा साबित नहीं हुआ।

तात्पर्य यह है कि तरह-तरह का विचार करने के बाद अन्त में यही कहा जा सकता है, सब प्रकार से विचार करने पर यही ध्यान में आता है कि **हमने जहाँ से प्रवास प्रारम्भ किया और जहाँ तक आज हम पहुँचे हैं,—यह प्रवास सन्तोष-जनक है। हमारा जो अन्तिम लक्ष्य है वह बहुत बड़ा है और वहाँ तक पहुँचने के लिए हमें अभी बहुत कुछ करना है। लेकिन जो कुछ हुआ है वह सब ठीक है।**

इसी पृष्ठभूमि पर मैंने कई बातों का उल्लेख किया है। इसके पश्चात् वर्ग की जो कार्यवाही होगी उस कार्यवाही में प्रमुख विषयों पर अलग-अलग विचार किया जायेगा। अभी इतना ही कहना इस समय पर्याप्त है।

o—×—o

युद्ध स्तर पर अखण्ड सावधान रहते हुए शक्ति संचय करना

अखण्ड सावधान रहना

युद्ध के कालखण्ड में हम प्रवेश कर रहे हैं। राष्ट्रीय स्तर पर युद्ध की स्थिति विद्यमान है—ऐसा दिखाई देता है। आर्थिक क्षेत्र का विचार करें तो सेकण्ड वार आफ इकोनोमिक इन्डिपेन्डेंस की हम तैयारी कर रहे हैं। ऐसा भारतीय मजदूर संघ ने घोषित किया है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने को तथा अपने संगठन को युद्ध स्तर पर तैयार करें। किन्तु युद्ध स्तर पर अपने को तथा अपने संगठन को तैयार करने का अर्थ बहुत बार अपने ध्यान में नहीं आता है क्योंकि बाहर के वायुमण्डल का काम चलता रहता है। बड़ी बातें तो ध्यान में तुरन्त आ जाती हैं। बड़ी बातों को सार्वजनिक जीवन में महत्व दिया जाता है, समाचार-पत्रों में भी स्थान प्राप्त होता है, क्योंकि वायुमण्डल ही ऐसा है। बहुत बड़ा प्रदर्शन होना चाहिए। उसकी उपयुक्तता है ऐसा कहा जाता है। किन्तु छोटी-छोटी बातें आँखों से ओझल हो जाती हैं जो कार्य के लिए आवश्यक होती हैं। कुछ बातें हम कर सकते हैं और करने की क्षमता भी है किन्तु उधर यदि ध्यान नहीं दिया गया तो वह चीजें बिना किये रह जाती हैं। इन बातों पर ध्यान न देने के कारण बड़ा नुकसान भी होता है। इसलिए सूक्ष्म विवेचन की तरफ हमारा ध्यान रहे—इस बात की बहुत आवश्यकता है। सावधानी की बात यह है कि हमें युद्ध की तैयारी करनी है।

श्री समर्थ गुरु रामदास महाराज ने शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् शंभाजी को चार्ज मिलने के बाद शंभाजी को एक मार्गदर्शक पत्र लिखा। उसका प्रारम्भ यहाँ से है कि "अखण्ड सावधान", जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अखण्ड सावधान रहना चाहिए। अच्छे लोग सावधान रहते हैं। बहुत काम करते हैं। त्याग करते हैं। पराक्रम करते हैं। सावधान रहने की उनमें क्षमता होती है, लेकिन अखण्ड सावधान नहीं रहते हैं।

1857 का युद्ध चल रहा था। उस समय स्वातंत्र्य योद्धाओं ने बड़ी विजय प्राप्त की। ग्वालियर का किला जीत लिया। ग्वालियर का किला गेट वे आफ दिल्ली माना जाता था। तो भी यह एक बहुत बड़ी विजय थी। उसके बाद संचालक लोगों की बैठक हुई। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने सुझाव दिया कि विश्राम करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि पीछे से सर ह्यू रोज और उसकी सेना आ रही है, इसलिए विश्राम बिल्कुल न लेते हुए सीधे दिल्ली की तरफ कूच

करेंगे और दिल्ली फतह करेंगे। कुछ लोगों ने कहा कि ग्वालियर जीत लिया है—बहुत बड़ी विजय हासिल हुई है। अब दिल्ली जीतने में कितनी देर लगेगी। अब विजयोत्सव थोड़ा-बहुत मनाना चाहिए। 2–3 दिन जरा आराम करना चाहिए। और इतिहास बताता है कि यदि ग्वालियर जीतने के बाद दिल्ली की ओर मार्च करते तो उस समय दिल्ली पर अवश्य विजय मिलती। अंग्रेज प्रति-कार नहीं कर सकते थे। किन्तु लोगों में अखण्ड सावधानी रखने की आदत नहीं थी। 2–3 दिन विश्राम कर लें इसमें आपत्ति क्या है? किन्तु इसी दो-तीन दिन में सारा नक्शा बदल गया।

अपनी भी कुछ ऐसी आदतें हैं। हम सावधान हैं किन्तु अखण्ड सावधान नहीं हैं। बड़ा काम रहा तो रात-रात जागकर अपनी तबीयत खराब करते हुए भी काम करते हैं। लेकिन जिसमें तबीयत खराब करने की आवश्यकता नहीं, बड़ा त्याग करने की भी आवश्यकता नहीं, बल्कि थोड़ी सावधानी की आवश्यकता है लेकिन जिसका बहुत महत्व है, ऐसी छोटी-छोटी बातों की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता है। केन्द्रीय कार्यालय से अपनी तरफ सरकुलर आता है। सरकुलर थोड़ा लम्बा है। कार्यकर्त्ता सोचता है कि सरकुलर लम्बा है, इसको जरा आराम से पढ़ेंगे। सरकुलर मेज की दराज में रख देता है और बाद में अन्य कागज भी उसी दराज में रखता है। धीरे-धीरे सरकुलर दराज में नीचे रह जाता है, उसको दुबारा कोई हाथ नहीं लगाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि हमारा कार्यकर्त्ता इनकाम्पीटेन्ट है, सुस्त है या अयोग्य है, ऐसा नहीं है। यह एक आदत है—बहुत छोटी आदत है। इसमें बहुत त्याग करने की आवश्यकता नहीं है। प्राणार्पण करने की आवश्यकता नहीं है। सरकुलर जो आया है उसको पढ़ लिया जाय—देख लिया जाय। उसमें क्या लिखा है, उसकी जानकारी कर ली जाय। इसके लिए कोई आत्म-बलिदान की आवश्यकता नहीं है। लेकिन अखण्ड सावधान रहने की आदत नहीं, इसलिए सरकुलर पढ़ते नहीं हैं। फिर जब दूसरा पत्र आता है तो उसको भी उसी तरह रख देते हैं। जब उनसे पूछा जाता है कि अमुक सूचना माँगी गई थी—उसका क्या हुआ? तो कार्यकर्त्ता कहता है कि आपने माँगा ही कब था। वह झूठ नहीं बोलता है। कार्यकर्त्ता के बारे में ऐसा हमारा अनुभव है कि कार्यकर्त्ता झूठ नहीं बोलता है। लेकिन प्रायः सच भी नहीं बोलता। कार्यकर्त्ता रिपोर्टिंग देता है—हम सुन लेते हैं। हमसे कोई पूछता है कि आपके पास तो सारी इनफॉरमेशन आ गई है? हम कहते हैं—हाँ, इन-फॉरमेशन तो आ गई है किन्तु पूरा चित्र आया है ऐसा मैं नहीं कह सकता। जब लोग पूछते हैं कि क्या आपको कार्यकर्त्ता पर विश्वास नहीं है? तो मैं कहता हूँ कि पूरा विश्वास है। किन्तु उसको जो सत्य का दर्शन होता है, वह पता नहीं—"इट इज हिज वरसन आफ दी ट्रुथ"। वह सत्य ही बोलता है—किन्तु उसे जो सत्य लगता है वह बोल रहा है। हो सकता है सत्य का कोई और वर्णन हो, जिसका उसको पता नहीं है।

कार्यकर्त्ता के मन को समझें

हमारे कार्यकर्त्ता बिल्कुल सत्यवादी हैं किन्तु दूसरे का भी सोचने का कुछ ढंग हो सकता है। यदि थोड़ा-सा प्रयास किया तो बात समझ में आ जायेगी। कोई बात कही जाय और दूसरा न माने तो इसका अर्थ है—उसकी पृष्ठभूमि कुछ दूसरी होगी। हमारी इच्छा ऐसी नहीं है कि आप बहुत बड़े मनोविश्लेषक बन जाएँ जैसा फ्रायड आदि। लेकिन मामूली काम चलाने के लिए जैसा माता-पिता मनोविज्ञान रखते हैं उतना मनोविज्ञान अपने साथियों के साथ व्यवहार करते समय हमें भी रखना चाहिए। अपने पास योग्यता है किन्तु हम सावधान नहीं हैं। इसलिए किसी पर या तो गुस्सा कर लेते हैं या उसके प्रति अपना अभिमत बना लेते हैं। तो मामूली आदमी जितना मनोविश्लेषण एक दूसरे का कर सकते हैं उतना तो हम करें। यह थोड़ा आवश्यक भी है।

हमारा आर्थिक व्यवहार

छोटी-सी चीज है लेकिन सार्वजनिक जीवन में बहुत महत्व की चीज है। वह है हमारा आर्थिक व्यवहार। हमारे आर्थिक व्यवहार बहुत अच्छे रहने चाहिए। शायद आप 5 लाख रुपये इकट्ठा नहीं कर सकते हैं यह बात तो हो सकती है किन्तु एक दूसरी छोटी-सी बात कि क्या यूनियन के नाम से आप बैंक एकाउन्ट रखते हैं? हर एक यूनियन का बैंक एकाउन्ट होना चाहिए। क्या इसके लिए बहुत ताकत की आवश्यकता है? या जो पैसा इकट्ठा किया है उसका हिसाब रहे। हर एक कार्यकर्त्ता का आर्थिक हिसाब ठीक होना चाहिए। इसमें अधिक ताकत नहीं लगती है। बाहर के वायुमण्डल का प्रभाव होता है। हमसे जब हिसाब पूछा जाता है तब हम सोचते हैं कि क्या हम पैसा खाते हैं? हमारे ऊपर विश्वास नहीं है क्या? अरे सवाल ही नहीं है। सार्वजनिक पैसा है तो उसका हिसाब रखना चाहिए। शुरू-शुरू में कार्यकर्त्ता को अपनी जेब से ही पैसा खर्च करना पड़ता है। दौरा करने के लिए जाना है, तो वह अपनी जेब से ही खर्च करके जाता है और फिर सोचता है कि यह तो मैंने अपना पैसा खर्च किया है। इसका हिसाब क्यों रखूं। एक कार्यकर्त्ता ने हमसे यह पूछा कि ठेंगड़ी जी, हम काहे को हिसाब रखेंगे। अभी तक जितना खर्च हुआ है वह मैंने अपनी जेब से दिया है। इसके कारण घर के लोग भी नाराज हैं। हमने कहा तुमने अपनी जेब से खर्च किया है तो यह भी एकाउन्ट में लिखो। कल यदि हमारी यूनियन की हालत अच्छी हो जावेगी तो शायद तुम्हारे पैसे वापस करने की व्यवस्था होगी। तुम्हारे मन में यह लालच नहीं है यह अच्छी बात है। लेकिन वापस होने के लिए एकाउन्ट होना आवश्यक है। बैंक एकाउन्ट खोलना, हिसाब रखना, इसमें कोई बड़ी ताकत नहीं लगती है। हम कर सकते हैं। पर हम करते हैं क्या? जरा इसका आत्म-निरीक्षण करें।

हमारा सम्पर्क क्षेत्र

प्रारम्भ में बड़ी यूनियन अपने पास नहीं थी तो छोटी यूनियनें थीं। उस समय कहा गया कि हमारा सम्पर्क-क्षेत्र विस्तृत होना चाहिये। 'सम्पर्क-क्षेत्र' ऐसा कहा गया। अब हम हैं प्रमुख कार्यकर्त्ता। वह कार्यकर्त्ताओं की टीम तैयार करता है, जिसे हम मास्टर माइन्ड ग्रुप (master mind group) कहते हैं। पहला जो कार्यकर्त्ता है वह केन्द्र में। फिर पहला छोटा सर्किल जिसमें कुछ कार्यकर्त्ता रहते हैं उसको मास्टर माइंड ग्रुप कहते हैं। उसके बाद जो अपने सदस्य हैं यह उसके ऊपर का सर्किल इसके ऊपर हमसे सहानुभूति रखने वालों का सर्किल। हमारे जितने सदस्य हैं उसके ऊपर वाले सर्किल की ज्यादा आवश्यकता है और छोटे स्थानों पर इसकी ज्यादा आवश्यकता है। किस-किस के साथ सम्बन्ध रखना चाहिए, सम्पर्क स्थापित करना चाहिए, यह बारीकी से सोचना चाहिए। फिर जो नजदीक का पुलिस स्टेशन है उसके अधिकारियों से नमस्ते का सम्बन्ध होना चाहिए। कारखाने के अगल-बगल में, रास्ते में, रास्ते की गली-कूचे में जो चाय की दुकान रहती है, पान-बीड़ी का ठेला रहता है वहाँ लोगों का अड्डा रहता है। हमारा कार्यकर्त्ता थोड़ा उस अड्डे पर बैठे और सबके साथ नमस्ते के सम्बन्ध हों। प्रत्येक कारखाने के पास गुण्डों का ग्रुप तो रहता ही है। कारखाने के पास रहने से गुण्डा लोगों को अच्छा व्यवसाय मिलता है। उन गुण्डों से भी हमारे अच्छे सम्बन्ध रहने चाहिए। जो गुण्डा लोग हैं उनसे बराबरी के नाते नमस्ते का सम्बन्ध रहे। लाचारी के नाते उनसे सम्बन्ध हम रखें ऐसा नहीं, किन्तु बराबरी के नाते उनसे अपना सम्बन्ध बना रहे। लेबर डिपार्टमेन्ट के अधिकारियों के साथ जिनका सम्बन्ध आता है तो केवल काम के लिए उनके पास जाना चाहिए ऐसा नहीं, बाकी के समय में भी हम सम्बन्ध रख सकते हैं। मैनेजमेंट के जो आफीसर्स हैं उनसे हमारे सम्बन्ध अच्छे रहने चाहिए। इसका तात्पर्य यह नहीं कि जिनसे हमारा सम्बन्ध है उनके प्रति हमारा रुख नरम है। भारतीय मजदूर संघ किसी को छोड़ता नहीं है। मैनेजमैंट यदि अन्याय करता है तो उसके विरुद्ध तीव्र गति से प्रखर आन्दोलन करता है। संघर्ष एक अलग बात है। लेकिन व्यक्तिगत बातचीत के सम्बन्ध मैनेजमेंट के साथ रहें। हमारे अच्छे सम्बन्ध हैं इसलिए हम गेट मीटिंग नहीं करेंगे या हड़ताल नहीं करेंगे ऐसी बात नहीं है। प्रतिस्पर्धी यूनियनों से हम सज्जनता का सम्बन्ध रखें। लेकिन यदि वह गुण्डागर्दी करने पर उतरते हैं तो मारपीट भी करनी पड़ेगी। कुछ दिन उनको अस्पताल में भेजने का काम भी करना पड़ सकता है।

किन्तु सारा कुछ करते हुए भी मन को शांत रखना और साथ ही बातचीत के सम्बन्ध रखना। भगवान् ने कहा है कि "युद्धस्व विगतज्वर:"—लड़ाई करो किन्तु बिना तनाव के। तभी वह लड़ाई सफल हो सकती है। यदि मारपीट हो जाय तो उनके नेताओं से मिलना और कहना कि अजी क्या है, कुछ गड़बड़ हो

गई। ऐसा नहीं होना चाहिए था पर ऐसा हो गया। चाहे जितनी मारपीट हो जाय लेकिन आपस की बातचीत बन्द है ऐसी स्थिति नहीं आनी चाहिए।

फिर जिस मुहल्ले में रहते हैं—खासकर के टाउनशिप में वहाँ पर अपने बारे में सभी की अच्छी धारणा रहे, लोग सामूहिक बुद्धि का परिचय दें। आपके विषय में यदि कोई गलत फहमी फैलाने का प्रयास करता है तो लोगों की स्वाभाविक प्रतिक्रिया यह रहे कि नहीं भाई आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए। सम्पर्क यह एक प्रमुख बात है। यह सम्पर्क हमारा जो कार्यकर्त्ताओं का सरकिल है उसको कवर करने वाला दूसरा सरकिल है। इसमें यह सारे लोग आते हैं। प्रत्यक्ष काम करने वालों के लिए एक्टिव सिम्पेथी (सक्रिय सहानुभूति) रखने वाले तथा दूसरे सरकिल के लोगों में उपकारक तटस्थता वाले लोग आते हैं। माने जो इधर के भी नहीं हैं उधर के भी नहीं हैं। आपके लिये दौड़कर आयेंगे ऐसी बात नहीं है किन्तु वे उपकारक तटस्थता अपनायेंगे। वे तटस्थ ही रहेंगे आपकी सक्रिय सहायता नहीं करेंगे। आप यदि अन्डरग्राउन्ड हैं और उसने पहचान लिया है तो पुलिस को नहीं बतायेगा। उपकारक तटस्थता हर चीज में काम आती है। आप इसे समझने की कोशिश कीजिए। यह सब मिलकर हमारी शक्ति बनती है। हम इस दृष्टि से सावधान हैं क्या? कितना होता है या कितना नहीं होता है इसका प्रश्न नहीं है। किसी से लड़ना नहीं है। अपने को अपना काम देखना चाहिए। लेकिन थोड़ा सावधान रहने से क्या क्या हो सकता है? जरा करके देखिये। पान बीड़ी के ठेले वाले से पूछना कहो भई गुलाब कैसा चल रहा है? बस इतना बोलने से काम हो जाता है। छोटी-छोटी बातों में सावधान रहना यह आवश्यक है। यदि हम लोगों ने ऐसा कहा कि हम दकियानूसी हैं। हम चींटी को भी मारना नहीं चाहते हैं। किन्तु ऐसे मौके आते रहते हैं जिसमें झगड़ा, मारपीट, यह सारी नोंक-झोंक होती है। अब ऐसा मौका आता है तो क्या करना क्या नहीं करना यह हम आपको बताने वाले नहीं हैं। अभी अखबार में एक वर्णन पढ़ने को मिला। एक सेना का प्लाटून दिल्ली से काश्मीर की ओर जा रहा था। डकैतों ने उन्हें मार्ग में लूट लिया। तो सेना के प्लाटून ने केन्द्र को शिकायत की थी कि पंजाब के पुलिस विभाग ने हमें संरक्षण नहीं दिया। ऐसा समाचार पत्रों में लिखा था—कहाँ तक ठीक है हम नहीं जानते। उस सेना के सिपाहियों के समान आप नहीं हैं, यह हम जानते हैं। आप सज्जन हैं किन्तु आवश्यकता पड़ने पर आप निपट सकते हैं यह भी हम जानते हैं। वास्तव में झगड़े का अवसर आया तो हम तैयार हो जाते हैं। किन्तु झगड़े का अवसर तो कभी भी आ सकता है तो उसकी पूर्व तैयारी के नाते यूनियन के साथ एक दो आदमी ऐसा होना चाहिए। यदि कोई आदमी पुलिस कस्टडी में चला जाता है तो घण्टा-आध घण्टा में जमानत देने के लिए वहाँ हमारा एक आदमी पहुँच जाय। जिसकी जमानत पुलिस स्वीकार कर सकती है ऐसा एकाध आदमी। मारपीट में हम बहुत

पराक्रम दिखा सकते हैं लेकिन जब पुलिस कस्टडी में हमारा आदमी चला जाता है तब तुरन्त ही जमानतदार ने वहाँ पहुँचना चाहिए। हमारे दो आदमी को पुलिस कस्टडी में ले गई। दूसरी पार्टी के दो आदमी को भी पुलिस ले गई। यदि दूसरी पार्टी का आदमी एक घण्टे में जमानत पर आ जाता है और अपने आदमी को छुड़ाने के लिए अपना कोई आदमी 24 घण्टे तक गया ही नहीं तो अपने आदमी पर क्या असर होगा? पुलिस पर इसका असर क्या होगा? अपने साथियों पर क्या असर होगा? यद्यपि यह बहुत मामूली सी बात है लेकिन हम इसे भूल जाते हैं। ऐसा नहीं कि हमने दो आदमी पहले से तैयार नहीं किये हुए हैं। वैसे ही पहली पेशी पर कोई भी वकील—बूढ़ा रहे, जवान रहे, जूनियर रहे, सीनियर रहे, कितना पैसा लगता है, देना है या नहीं देना है यह झंझट न करते हुए यदि उपस्थित हो जाएगा बाद में पैसे का हिसाब भी हो सकता है। यह सारा उपक्रम हो सकता है। लेकिन इधर ध्यान नहीं दिया माने सावधानी न बरती तो इसका मतलब है कि सावधान रहने की हमारी क्षमता तो है परन्तु हम अखण्ड सावधान नहीं रहते हैं।

परस्पर सहयोगात्मक तालमेल

मान लीजिये एक गाँव में 5–6 इन्डस्ट्रीज में हमारी यूनियन है। कहीं हमारी शक्ति अच्छी होती है और कहीं हम कमजोर होते हैं। यदि एक यूनिट में हमारी शक्ति बहुत कमजोर है। दूसरी यूनियन के कार्यकर्त्ताओं ने हमारी यूनियन के कार्यकर्त्ताओं को तकलीफ दिया। तकलीफ कई प्रकार की होती है। सामाजिक बहिष्कार माने जो पार्टी लीडर्स हमारे यहाँ आयेंगे हमारे पानी को भी हाथ नहीं लगायेंगे। कैन्टीन में यदि इनको चाय पिलाई गई तो दूसरी खिलाफ यूनियन के लोग कैन्टीन का बहिष्कार करेंगे। वह लोग बहुमत में थे पर हमारे पास केवल 3–4 सदस्य ही थे। यह बात बहुत दिन तक चली। कुछ झगड़ा हुआ। अपने ही आदमी का प्रबन्धकों द्वारा ट्रांसफर करने पर हमारी अपनी अन्य यूनियन के सदस्यों ने इकट्ठा होकर उस फैक्ट्री के सामने प्रदर्शन किया। वहाँ पर जब 300–350 आदमी इकट्ठा आये और प्रदर्शन हुआ, घिराव किया, गाली-गलौच की, ऐसा जब दृश्य उपस्थित हो गया तो सामाजिक बहिष्कार भी समाप्त हो गया और ट्रांसफर का मामला भी रुक गया। वहाँ पर हमारी सदस्यता एक दम बढ़ी ऐसा नहीं है। एक यूनिट के लोग हमारे संकट में हैं ऐसा पता चलने के बाद किसी न किसी बहाने कोई निमित्त लेकर बाकी के जो हमारे साथी हैं जो हमारी अन्य दूसरी यूनियनों के हैं वहाँ आकर जब प्रदर्शन करते हैं तो कम-जोर यूनियन के कार्यकर्त्ताओं को राहत मिलती है। ऐसा कई जगह हुआ है। इससे यह बात स्पष्ट है कि एक गाँव में जितनी अपनी यूनियनें हैं उन सब की एक मास में एक बैठक होती है। यदि कोऑर्डीनेशन कमैटी बनी है तो सब यूनियनों को

मिलाकर साप्ताहिक, पाक्षिक अथवा मासिक नियमित बैठक होती है। बैठक में एक दूसरे के बारे में जानकारी ली जाती है इससे भी एक दूसरे का हौसला बढ़ता है। हम अकेले नहीं हैं यह भावना उत्पन्न होती है। एक ही शहर की सभी यूनियन के प्रमुख लोगों की 15 दिन में, एक माह में सम्मिलित बैठक होनी चाहिए। यह बहुत आसान है, ऐसी बात नहीं है। लेकिन यह आवश्यक है। इससे हमारी यूनियनें सशक्त हो सकती हैं। किन्तु एक दूसरे की जानकारी न होने के कारण न तो हम एक दूसरे को पहिचानते हैं और न ही एक दूसरे की जानकारी रखते हैं। फलस्वरूप सशक्त होते हुए भी हम अकेले हैं, कमजोर हैं ऐसा वे अनुभव करते हैं। इसलिए मासिक बैठक होनी चाहिए। सब मिलाकर ताकत अधिक है किन्तु परस्पर सहयोग और सम्पर्क न होने के कारण गतिशीलता नहीं रहती है। हम सबको एक साथ सक्रिय गतिशील बना सकें, यही प्रयास होना चाहिए।

सक्रिय गतिशीलता

सक्रिय गतिशीलता न होने पर ऐसी स्थिति हो जाती है जैसा Mammals के बारे में कहा जाता है। सृष्टि के प्रारम्भ में अजगर जैसे भयंकर विशालकाय प्राणी थे। ऐसे विशालकाय प्राणी समाप्त कैसे हुए इसके बारे में शास्त्रज्ञ खोज करने लगे तो एक विचित्र बात का पता चला कि इन विशालकाय प्राणियों में अजगर की जैसी ताकत तो ज्यादा थी किन्तु गतिशीलता नहीं थी। यूं तो यह प्राणी विशालकाय थे पर छोटे-छोटे प्राणी भी थे लेकिन यह छोटे-छोटे प्राणी आमने सामने इनका मुकाबला नहीं करते थे। यदि आमने-सामने इनका मुकाबला करते तो वे अजगर जैसे विशालकाय इन प्राणियों के पेट में चले जाते। तो यह छोटे-छोटे प्राणी अजगर जैसे विशाल मैमल्स को पूंछ की ओर से काट-काट कर खाना शुरू करते थे। अजगर के दिमाग को काट खाने की सूचना-संवेदना देर से मिलती थी कारण कि शरीर विशाल था, इसलिए दिमाग को संवेदना देर से मिलती थी। अजगर की ताकत ज्यादा थी लेकिन गतिशीलता कम होने की वजह से काट खाने वालों को पकड़ भी नहीं पाता था। संवेदना प्राप्त होने पर जब यह घूमता था तब तक वह भाग जाते थे। धीरे-धीरे छोटे-छोटे जानवर पूंछ की ओर से काटते-काटते इन विशालकाय प्राणियों को पूरा खा गये। गतिशीलता कम होने के कारण ऐसा हुआ। ताकत ज्यादा थी लेकिन गतिशीलता नहीं थी। संवेदन-शून्यता की वजह से जो शक्तिशाली है उसकी भी गतिशीलता घट जाती है और फिर उनको समाप्त करना तुच्छ के लिए भी कठिन नहीं होता है।

संवेदनशीलता

गोरिल्ला वारफेयर में भी यह अनुभव है कि कुल मिलाकर ताकत बहुत

है लेकिन संवेदनशीलता नहीं है । संवेदनशीलता कम है इसलिए बहुत शक्तिमान प्राणी की भी गतिशीलता घट जाती है और फिर उनको समाप्त करना कम शक्तिमान प्राणियों के लिए भी सम्भव हो जाता है । संगठन का भी यही हाल है । इंटक की बहुत सदस्यता है । इस नाते वह कुछ अच्छे निर्णय ले सकेंगे यह सम्भव नहीं है । वह कोई ऐक्शन ले सकेंगे ऐसी भी सम्भावना नहीं है । यद्यपि हमारे जैसे छोटे प्राणी उनको काटने वाले नहीं हैं । क्योंकि काटकर खाने लायक उनकी अवस्था नहीं है । इसमें मजा भी नहीं आएगा । लेकिन विशाल सदस्यता है किन्तु गतिशीलता नहीं है । किन्तु हमें भी आत्मनिरीक्षण करना चाहिए कि हमारी हालत भी बहुत बार ऐसी होती है कि नहीं । विश्वकर्मा जयन्ती के अवसर पर कम उपस्थिति रहती है जब कि हमारी सदस्यता बीस हजार है । क्या यह नहीं बताता है कि हमारी गतिशीलता कम है । इसका एक कारण और है कि सभी ध्येयवादी नहीं हैं, परस्पर के सम्बन्ध कम हैं । अलग-अलग यूनियन के प्रमुख कार्यकर्ताओं का आपसी मेलजोल कम है, एक दूसरे से सम्पर्क कम है । इस कारण गतिशीलता कम हो जाती है ।

नेपोलियन की विशेषता यह थी कि उसके पास सेना कम रहती थी, किसी इतिहासवेत्ता ने औसत निकाला और कहा कि 1, 2, 3 का औसत उसकी सेना और उसके दुश्मन की सेना का रहता था । नेपोलियन की सेना से उसके शत्रु की सेना तीन गुनी रहती थी किन्तु नेपोलियन को अपने स्वयं का आत्मविश्वास बहुत था । यदि शत्रु की सेना एक लाख 50 हजार होती थी तो नेपोलियन कहता था कि 50 हजार हमारी सेना है तथा एक लाख अकेला मैं हूँ । अब यह आत्मविश्वास की ही बात है । नेपोलियन के रिसोर्सेस कभी भी दुश्मनों से ज्यादा नहीं थे बहुत कम थे लेकिन सब मिलाकर नेपोलियन के आत्मविश्वास की बजह से उसकी सेना की संख्या कम रहते हुए भी दुश्मन की सेना की अपेक्षा उसमें गतिशीलता अधिक थी । इसी कारण आत्मविश्वास था । नेपोलियन दूरबीन से दुश्मन की सेना के रैंकस् देखता था । उसका अध्ययन करता था, उसमें यह देखता था कि शत्रु की सेना किस स्थान पर कमजोर है । कोई भी सेना सब जगह पूरी ताकत नहीं रखती है । जहाँ हल्की सेना है वहीं नेपोलियन हमला करता था । इसके कारण शत्रु पक्ष की सेना में भगदड़ मच जाती थी । वह बीच में घुस जाता था । इसी तरह उसकी विजय होती थी । कई जगह विजय होती थी । कहाँ शत्रु की कमजोरी है कहाँ उनकी शक्ति है उसका अन्दाजा लेना नेपोलियन का प्रमुख काम था । कुल मिलाकर हमारी ताकत ज्यादा है किन्तु हमारे रिसोर्सेस का मोबिलाइजेशन नहीं हो रहा है । ऐसी स्थिति में विजय प्राप्त करना कठिन हो जाता है ।

आसक्ति

हम यह स्पष्ट समझ लें कि भारतीय मजदूर संघ एक अलग प्रकार का संगठन है । यह राष्ट्र-शक्ति की सेना का एक विभाग है ऐसा बार-बार कहा गया है ।

हमारा संघ परिवार है। पाँच-छः वर्ष पहले संघ परिवार की बैठक ही नहीं होती थी। सब संघ के साथ अलग से सम्पर्क करते थे। अब बहुत जगह संघ परिवार की बैठकें भी शुरू हुईं। वहाँ यदि हमारा सम्पर्क रहा तो कई समस्यायें तो वैसे ही हल हो सकती हैं। वहाँ से पोषण मिल सकता है। अब एक समस्या पहले थी और आज भी है। खासकर बैंकिंग में और एल.आई.सी. में कम्युनिस्टों का होल्ड (पकड़) है। संघ के अच्छे स्वयं सेवक भी पहले से कम्युनिस्ट यूनियन में रहे और रहते आए हैं। अब उनकी इच्छा होती है कि काहे को यूनियन छोड़ना। ठीक है संघ के लिए हम सब कुछ करने को तैयार हैं। संघ के अच्छे कार्यकर्ता भी हैं लेकिन फिर यह बी.एम.एस. का काम संघ का ही काम है ऐसा हमें आदेश नहीं मिला है। अब इस विषय में संघ की भूमिका स्पष्ट है। हम जानते हैं कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कोई भी फ्रंट आर्गनाईजेशन नहीं है। क्योंकि, संघ माने सम्पूर्ण हिन्दू समाज। सम्पूर्ण राष्ट्र। तो फ्रंट आर्गनाईजेशन, ट्रांसमिशन बेल्ट कहाँ रखेंगे ? कोई जगह ही नहीं है रखने के लिए ? स्वयंसेवक ही संघ के बीज हैं। और इस दृष्टि से जब बैंकों में काम शुरू हुआ तो नागपुर में बैंकों के कुछ लोग हमारे पास आये। हमने कहा कि हमारा काम शुरू हुआ है। लेकिन वे अच्छे स्वयंसेवक होने के बावजूद जहाँ हैं वहाँ से हिलने वाले नहीं। कारण कि उनका लगाव हो गया था। वह वहाँ पर सेक्रेटरी वैगरह थे पब्लिक इमेज भी थी तो वहाँ से हिलना नहीं चाहते थे। यह मनुष्य का स्वभाव है, ऐसा होता है। जैसे कोई किराये के मकान में 15–16 वर्ष रहा हो। यदि उसका नया मकान बन जाता है तो पुराना छोड़कर नये मकान में जाना है फिर भी पुराने मकान के प्रति मोह रहता ही है। यकायक आत्मीयता समाप्त होना कठिन होता है।

बराह भगवान को भी आसक्ति

बराह अवतार में पृथ्वी को ऊपर लाने के लिए परमेश्वर ने बराह अवतार लिया। सागर में डूबती हुई, खिसकती हुई, धसकती हुई धरती को ईश्वर ने, बराह भगवान ने ऊपर उठाया, आकाश में देवता इकट्ठा हो गये सबने पुष्पवर्षा की और कहा कि महाराज आपका जीवन कार्य (लाइफ मिशन) पूरा हुआ है तो अब आप ऊपर आ जाइए। बराह कहते हैं लाइफ मिशन तो पूरा हुआ है। ऊपर आना ही है लेकिन इस बीच में मैं यहाँ रहा रहूँ तो मेरी पत्नी बराही भी है। बराही के बच्चे जरा छोटे हैं। बराही भी गर्भवती है जरा जचकी (बच्चा पैदा हो जाने दीजिये) हो जाय बच्चे थोड़ा बड़े हो जायें तो फिर मैं तो ऊपर आने ही वाला हूँ। माने भगवान ने स्वयं ऐसा कहा। ऐसा रामकृष्ण परमहंस ने कहा है। भगवान को भी बराह अवतार लेने के बाद उस रूप के प्रति आसक्ति निर्माण हुई। तो कार्यकर्ताओं को भी इतने साल कम्युनिस्ट यूनियन में रहने के कारण उसके प्रति कुछ तो आसक्ति होगी ही। हमने कहा जाने दीजिए। B.M.S का काम तो

चलने वाला ही है । संघ की कोई संस्था फ्रंट आर्गनाईजेशन के रूप में नहीं है । तो हमारे कुछ कार्यकर्ता परमपूज्य श्री गुरुजी से मिले और स्वयंसेवक जो भारतीय मजदूर संघ के अलावा अन्य संगठनों में हैं उनके बारे में चर्चा की । परमपूज्य श्री गुरुजी ने उनकी सब बातें शान्ति से सुनने के बाद कहा कि मैं सरसंघचालक हूँ और संघ माने सम्पूर्ण समाज । तो मैं कैसे घोषित कर सकता हूँ कि जितने मजदूर भारतीय मजदूर संघ के साथ हैं उनका मैं सरसंघचालक हूँ और जो भारतीय मजदूर संघ के साथ नहीं हैं वह मेरे दायरे से बाहर हैं । ऐसा मैं क्या कह सकता हूँ ? हम तो उनको भी अपना समझते हैं जो संघ को गाली देते हैं । संघ के स्वयंसेवकों के साथ जो मारपीट करते हैं हम उनको भी पोटेन्शियल स्वयंसेवक समझते हैं । कारण कि वह समाज के अंग हैं । जो संघ के खिलाफ जाने वाले हैं वह हमारे दायरे से बाहर नहीं हैं । इसलिए हम किसी को डिसओन (disown) नहीं कर सकते हैं । आप तो भारतीय मज़दूर संघ का काम इतना बढ़ाइये कि जो भारतीय मजदूर संघ में आज नहीं हैं उनको भी बी.एम.एस. में आना बाध्य हो जाय । यह सभी क्षेत्रों के लिए लागू है । पिछले पाँच छः साल से संघ परिवार की बैठकों का उपक्रम प्रारम्भ हुआ है । कभी ऐसा अनुभव होता है कि अमुक विषय में अपना क्या स्टैंड है इसकी संघ के अधिकारियों को भी जानकारी नहीं रहती है फिर सहायता तो आगे की बात है । वैसे भी भा.म.सं. का विषय कोई बड़ा मनोरंजक विषय तो है नहीं । जैसे यदि अटल जी ने कहा कि अगले चुनाव में क्या होगा तो सभी लोग ध्यान से सुनेंगे । और हम यदि चर्चा भी करेंगे तो डिसप्यूट ऐक्ट की या उसकी कौन-कौन सी धारा हमारे किस विवाद में कितना उपयुक्त हो सकती है इसकी चर्चा करेंगे । अतः पहले हमें अपने विषय में रस निर्माण करना होगा जो कठिन काम है । लेकिन हमें रुचि का निर्माण करना ही होगा । प्रमुख अधिकारियों के पास बार-बार जाकर वह चाहें या न चाहें पर मान न मान मैं तेरा मेहमान । इस विषय में हमारे बच्छराज जी व्यास का बड़ा प्रसिद्ध वाक्य था "तुम मानो न मानो हम तो हैं तुम पर फिदा"—ऐसा ही कार्यकर्ता का व्यवहार होना चाहिए । बच्छराज जी व्यास कहते थे आक्रामक प्रेम (Aggresive love) ऐसा उनका शब्द था । और इसके कारण बहुत बार अपने ही बारे में अपने ही क्षेत्र में नासमझी (misunderstanding) उत्पन्न हो जाती है ।

संघ परिवार में भी मिसअण्डरस्टैंडिग होती है । उनके पास न तो आपकी खबर पहुँचती हैं और आप भी नहीं पहुँच पाते हैं । आपके मन में कोई गलत भावना नहीं होती है । आप समझते हैं कि हम तो ईमानदारी से काम कर रहे हैं । हम वही काम कर रहे हैं । किन्तु जब आप बताते ही नहीं हैं और दूसरी तरफ कोई पहले बता जाता है उसी का प्रभाव मन पर रहता है । अनावश्यक ही गलतफहमी पैदा होती है । सम्पर्क बराबर बना रहने से पोषक तटस्थता भी बनी रहती है ।

उपकारक तटस्थता की याद हमको तभी आती है जब सामूहिक रूप से उसकी जरूरत महसूस होती है। इसमें बहुत बड़ी ताकत नहीं लगती है लेकिन इस तरफ हमारी सावधानी नहीं रहती है। हम कार्यकर्त्ता जब कोई हड़ताल होती है तो बड़ी सावधानी से काम करते हैं। रात भर जागरण करते हैं। लेकिन अखण्ड सावधानी न होने के कारण जो हमारे बस की बातें हैं वह भी हम नहीं करते, बोल भी नहीं सकते। और फिर यदि हम युद्ध की तैयारी में हैं तो हमें यह अन्दाजा होना चाहिए कि युद्ध के जो दोनों पक्ष हैं इनकी ताकत क्या है? क्या स्टैंड होना चाहिए? हर स्तर पर लड़ाई है ऐसे युद्ध होना चाहिए। शत्रु-पक्ष की शक्ति कितनी है, अपनी शक्ति कितनी है? हम अपने ही घमण्ड में रहें यह भी अच्छा नहीं है। रियलिस्टिक ऐससमेन्ट (Realistic Assessment), यथार्थ अन्दाजा इस बात का होना चाहिए। यह बहुत आवश्यक है। नेपोलियन छिपकर बराबर शत्रुपक्ष का निरीक्षण करता था। गीता में तत्वज्ञान है, ज्ञान की बातें हैं, आध्यात्मिक बातें हैं किन्तु तो भी एक बात ध्यान में रखने लायक है। लड़ाई के पहले अर्जुन भगवान से कहते हैं "सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत"। मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच खड़ा करो। मैं देखूंगा कि उधर कौन-कौन हैं—इधर कौन-कौन हैं। रियलिस्टिक एसेसमेन्ट आफ सिचवेशन, स्थिति का यथार्थ अन्दाजा होना चाहिए। हमको आवेश तो अधिक रहता है लेकिन रियलिस्टिक ऐससमेन्ट होता नहीं है। यह होने की आवश्यकता है। अब हर एक की कितनी शक्ति है इसका सही एसेसमेन्ट हमारे पास है क्या? शत्रु का एसेसमेन्ट लेने वाले लोग तो शायद हमारे पास होंगे। लेकिन हमने ऐसा अनुभव किया है कि हमारे कार्यकर्त्ता खुद की शक्ति के बारे में जानकारी नहीं रखते।

खुद की शक्ति क्या है

अब शक्ति हम जब कहते हैं तो उसमें पोटेन्शियलिटी यानि सम्भावनाएँ, शक्ति के कहाँ तक बढ़ने की सम्भावनाएं हैं, यह भी विषय उसमें आता है। आज अपने पास जितने लोग हैं उनकी कितनी शक्ति है, उनकी कितनी सम्भावनाएँ हैं? इसकी पूरी-पूरी जानकारी रखना यह भी आवश्यक है।

मनोवैज्ञानिक शक्ति

बहुत बार यह शक्ति शारीरिक स्तर पर केवल संख्यात्मक नहीं रहती मनोवैज्ञानिक हो जाती है। इसके कारण शक्ति का अन्दाजा लगाना बहुत कठिन हो जाता है। मैंने इससे पहले उदाहरण दिये थे। एक सम्पन्न परिवार की लड़की बहू बनकर हमारे परिवार में आई। श्रीमंत परिवार की होने की वजह से उसके घर पर 5–6 नौकर थे। उसको कभी रसोई बनानी नहीं पड़ी। पानी से भरी बाल्टी नहीं उठानी पड़ी। अब हमारे यहाँ तो उसको रसोई बनानी पड़ गई।

तो रोटी बनाते समय यदि गरम रोटी को हाथ लग जाता तो वह सां-सू, सां-सू करती थी। हमारे घर की लड़कियाँ उसका बड़ा मजाक बनाती थीं। एक दिन रात में घर में आग लग गई। आग की लपटें देख वह हड़बड़ाकर सोती से जागकर एकदम बाहर आ गई। बाहर आने पर इसको ध्यान आया कि उसका नवजात शिशु तो अन्दर ही रह गया है। तो वह लांघ कर पहले कमरे से दूसरे कमरे में गई और दूसरे से तीसरे कमरे में गई और अपने बच्चे को गोद में लेकर बाहर आ रही थी तो उसकी साड़ी को आग लग गई। तुरन्त उसे हास्पिटल में भेजना पड़ा। लेकिन जिसको रोटी सेंकना भी नहीं आता जो रोटी की गरम भाप से सां-सू, सां-सू करती है उसने जलते हुए मकान के अन्दर जाकर शिशु को बाहर निकालने का साहस कैसे किया होगा? तो किस समय किसकी शक्ति कितनी होगी, जब तक उसकी मानसिकता नहीं जानेंगे, अपने कार्यकर्त्ताओं का मनोविज्ञान आप नहीं जानेंगे तब तक यह बताना मुश्किल है।

एक नवाब साहब थे। कुश्ती के शौकीन थे। उन्होंने पंजाब का जो उस समय का सबसे अच्छा उस्ताद था, उस पहलवान को रखा हुआ था। नवाब का चैलेंज था कि हमारे पहलवान से जो लड़कर कुश्ती जीत लेगा उसे बख्शीश देंगे। ऐसा उन्होंने कहा था। कई पहलवान आये सब हार गये। इसी बीच एक आदमी अपने जवान बेटे के साथ आया। धर्मशाला थी, उसमें वह ठहरा। उसका जो पुत्र था वह कभी अखाड़े नहीं गया था। उसने कभी दण्ड-बैठक भी नहीं लगायी थी, कुश्ती का तो नाम ही नहीं, ऐसा वह दुबला-पतला था, एकदम सींकिया पहलवान जैसा। नवाब साहब से मिलकर उस आदमी ने कहा कि मेरा लड़का आपका चैलेंज स्वीकार करता है। वह आदमी बाहर का था, उसके लड़के के बारे में किसी को अनुमान नहीं था। नवाब साहब ने कहा कि ठीक है। कल परसों कुश्ती का आयोजन होगा। उस आदमी ने नवाब से कहा कि साहब हमें विश्वास है कि आप में कुछ न्यायबुद्धि है। आप नवाब हैं, मैं तो गरीब आदमी हूँ। मेरा लड़का कुश्ती तो अच्छा खेलता है लेकिन मैं उसको खुराक अच्छी नहीं खिला सकता, इसके कारण वह कुछ कमजोर है। कुश्ती में तो यह देखना पड़ता है कि कुश्ती के दाँव पेच कौन अच्छे जानता है, तो कम से कम उसको खुराक खिलाने की व्यवस्था तो कीजिए। 5–6 महीने का इंतजाम कीजिए बाद में कुश्ती होगी। बोले ठीक है 6 महीने बाद चैलेंज की कुश्ती होगी। तो नवाब साहब ने छह महीने बादाम-पिस्ता वगैरह खाने के लिए पूरी व्यवस्था कर दी। अब पहले 3–4 महीने तक जो नवाब का पहलवान था उसने फिक्र ही नहीं की। अहः! होगा कोई कौन सा जरूरी है। लेकिन जैसे-जैसे वह दिन नजदीक आने लगा उसे जिज्ञासा जागृत हुई। आखिर वह है कौन—मेरे से लोहा लेने वाला। यह कौन है तो खबर लेने के लिए अपने दोस्त को खुफिया के नाते जैसे गुप्तचर भेजा जाता है—भेजा। अब उस बेचारे के साथ जो स्थिति थी—उसके

कमरे में पहुँचा तो उसको आश्चर्य हुआ। नवाब साहब द्वारा खुराक की व्यवस्था करने के बाद भी उस लड़के के शरीर में कोई फर्क ही नहीं था। वह सींकिया पहलवान ही थी। यह बात जब गुप्तचर ने नवाब के पहलवान को बताई तो उसने कहा कि कोई राज अवश्य है तभी तो उसने मेरे साथ कुश्ती लड़ने की हिम्मत जताई है तो फिर उसने उस लड़के के पिता से दोस्ती बढ़ाई। यह भी अच्छा मनोविज्ञान जानने वाला था, पढ़ा लिखा नहीं था इसलिए सायक्लोजी अच्छी जानता था। उसने सम्बन्ध बनाना शुरू किया। कुछ दिन के बाद कहा भाई क्या बात है? आपका यही लड़का कुश्ती लड़ने वाला है। हाँ—यही लड़का है और यही कुश्ती लड़ेगा। तो बोला, यही लड़ेगा? हाँ। तो कैसे? तो वह बोला अभी नहीं जब कुश्ती हो जायेगी तब बताऊँगा। इसका क्या रहस्य है यह मैं कुश्ती हो जाने के बाद ही आपको बताऊँगा। इसने बात पता करने के लिए और दोस्ती बढ़ाई। तब एक दिन उसने कहा कि देखो किसी को बताना नहीं मेरा लड़का क्या है, यह तो मच्छर भी नहीं मार सकता है लेकिन मैं इसका बाप हूँ और मैंने एक सिद्धि प्राप्त की है और वह सिद्धि ऐसी है कि कुश्ती के समय मेरे लड़के से जो हाथ मिलाएगा तो शरीर का शरीर से स्पर्श होते ही वह बेहोश होकर गिर जाएगा। आप जानते ही हैं कि हाथ मिलाए बगैर कुश्ती होती नहीं। बाद में उसका क्या होगा यह मेरी जिम्मेवारी नहीं है। आज भी लोग कुछ न कुछ ऐसा विश्वास रखने वाले होते हैं। जब कुश्ती का दिन आया तो अगल-बगल के गाँव से दो ढाई हजार लोग इकट्ठा हो गये। नवाब साहब कुर्सी पर आकर बैठ गये। चारों तरफ लोग बैठे हैं। जब वह दुबला-पतला सींकिया पहलवान मैदान में पहुँचा तो लोग हंसने लगे। यह क्या कुश्ती लड़ेगा, ऐसा प्रश्न लोगों के मन में उठने लगा? लेकिन नवाब साहब का पहलवान आया ही नहीं। आया नहीं तो लोगों को आश्चर्य हुआ। पाँच-दस मिनट के बाद नवाब साहब ने कहा कि उसको ले आओ। पहले तो वह आने को तैयार नहीं हुआ। फिर नवाब साहब के आदेश का ध्यान आया और वह आ गया। मैदान में आने के बाद वह बीच में आने को तैयार नहीं। जब वह बीच में आने को तैयार नहीं तो वह लड़का नवाब साहब के पहलवान की ओर बढ़ने लगा। जैसे-जैसे वह दुबला पतला लड़का आगे बढ़ा तो पहलवान मैदान छोड़कर भागने लगा। लोगों ने यह विचित्र दृश्य देखा। वह सींकिया पहलवान पीछा कर रहा है, मगर असली पहलवान भाग रहा है।

तो किसकी कितनी शक्ति है यह केवल शरीर पर अवलम्बित नहीं है। मानसिकता क्या है? शक्ति इस पर अवलम्बित होती है। मानसिकता क्या है यह जानने के लिए कार्यकर्त्ताओं का मन जानने की आवश्यकता है। शायद दूसरों की मानसिकता जानना थोड़ा कठिन है किन्तु जो कार्यकर्त्ता अपने नजदीक रहते हैं उनकी मानसिकता जानना इतना कठिन कार्य नहीं है। यह बहुत ताकत

की बात है, इसके लिए बहुत मनोविज्ञान के ग्रन्थ पढ़ने पड़ेंगे, ऐसी बात नहीं है। परिवार चलाने वाले, घर चलाने वाले अनाड़ी लोग भी अपने परिवार के लोगों की मानसिकता जानते हैं और मानसिकता जानकर ही व्यवहार करते हैं। तो यह हमारे लिए कुछ कठिन काम है क्या ? यह काम करना है यह हो सकता है पर सावधानी नहीं है। उसका एसेसमेन्ट अपने पास होना चाहिए। अपनी शक्ति क्या है ? दूसरों की शक्ति क्या है—यह सावधानी छूट जाती है इसलिए वह बात आँखों से ओझल हो जाती है।

तो मेरे कहने का अर्थ यह है कि हम लोग आर्थिक क्षेत्र में सेकन्ड वार ऑफ इन्डिपेन्डेंस की बात कर रहे थे। राष्ट्र की दृष्टि से देखा जाये तो तरह-तरह के चैलेन्जेज राष्ट्र के सामने हैं। ऐसा हम सब जानते हैं। यह विस्तार से इस समय कहने की आवश्यकता नहीं है। तो युद्धस्तरीय तैयारी चाहिए और युद्धस्तरीय तैयारी करने में बहुत बड़ा बलिदान करना पड़ता है। इसके लिए बहुत मेहनत करनी होगी। तो कोई रात रातभर जागरण कर रहे हैं। लोगों का हौसला बढ़ा रहे हैं—यह अलग बात है। सामान्य व्यवहार में बहुत ज्यादा तकलीफ न उठाते हुए भी केवल सावधानी रखनी है। तो सरकुलर आया है केन्द्रीय कार्यालय से, उसे पढ़ कर देख लें। बहुत कष्ट की बात नहीं है। 10 लाख रुपया इकट्ठा नहीं हुआ तो कोई आपत्ति की बात नहीं है लेकिन बैंक एकाउन्ट खोल देना चाहिए। पैसा अपनी जेब से खर्च किया है तो भी हिसाब लिखना ही है। यह कोई कठिन बात नहीं है। यह तो अपने बस की बात है। जाते-जाते पान बीड़ी के ठेले वाले से यदि कहा, कहो भाई तुम्हारी तबियत कैसी है ? और फिर चलते-चलते आगे बढ़ जाइये, इसमें कोई विशेष ताकत नहीं लगती है। केवल सावधानी की बात है। थानेदार हैं, उनसे नमस्ते कीजिये। कहिए आजकल दिखाई नहीं देते आप, लगता है ज्यादा व्यस्त हो गये हैं। यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। बहुत बुद्धिमानी की भी बात नहीं है। मामूली बातें हैं। ऐसी छोटी-छोटी बातें हैं जो अभी बताई गई हैं।

केवल अखण्ड सावधानी न रहने के कारण जो शक्ति-संचय स्वाभाविक रूप से हो सकती है, उस शक्ति-संचय से भी हम वंचित रह जाते हैं। तो बड़ी बातें जो होंगी। स्ट्रेटिजी क्या है ? यह है—वह है यह सब बाद में देखा जायेगा। किन्तु यह जो छोटी बातें हैं जो केवल अखण्ड सावधानी के कारण स्वाभाविक रूप से हो जाती हैं, उधर हम अपना ध्यान रखें। हम भी अखण्ड सावधान रहें इस समय मैं यह आप से कहना चाहूँगा।

०—×—०

हमारा संगठन है धर्मदण्ड, अर्थात् विकृतियों पर अंकुश

हमारी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हम पागल हैं। शेष सब लोग व्यवहार-चतुर हैं, बुद्धिमान हैं। पागल कहने के बाद यह भी बताना पड़ेगा कि जिन कई कारणों से हमें पागल कहा जाता है उनमें से प्रमुख कारण क्या हैं और साथ ही यह भी स्मरण करना पड़ेगा कि हमें जोरदार ढंग से पहली बार कब पागल कहा गया और बड़े पैमाने पर आखरी बार यह उपाधि हमें कब दी गई।

आखरी बार हमको पागल कब कहा गया ?

हमें आखरी बार पागल कहा गया यह बात बिल्कुल अभी-अभी की है। मैं सोचता हूँ कि आपमें से 60–70 प्रतिशत लोगों के विषय में यह बात सही होगी कि जब आप लोग यहाँ आने के लिये निकले होंगे तब पत्नी ने अवश्य ही आपको पागल कहा होगा। उसने पूछा होगा कि—कहाँ जा रहे हो? आपने कहा होगा—नागपुर जा रहे हैं। कोई काम है क्या ? "नहीं हमारा अखिल भारतीय अभ्यास वर्ग है।" ध्यान में न आने के कारण फिर उसने पूछा होगा, "अभ्यास वर्ग क्या है ?" "वहाँ जाने से क्या मिलेगा ?" मिलना क्या है ? कुछ भी नहीं। उलटे जाने-आने का कष्ट ही है। जेब से पैसा खर्च करना होगा, मजदूर संघ तो कुछ भी नहीं देगा। परिवार वालों से कुछ दिन दूर भी रहना होगा। कुछ लोग वैतनिक और कई लोग अवैतनिक अवकाश लेकर भी आएँगे । यानि पैसा का भी नुकसान है। पत्नी को यह बात तुरन्त ध्यान में आई होगी और तब उसने तुरन्त कहा होगा कि आप पागल हैं। भौतिक दृष्टि से उसका कहना ठीक भी है। दुनिया की आज की रीति के अनुसार यह सही है। अतः मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि अपने घर का वायु-मण्डल खराब करने के बजाय आप फिर से विचार करें कि घाटे का सौदा करना है या नहीं ?—पागल कहलाना है या नहीं ? वस्तुतः हमें इसी सन्दर्भ में यहाँ आने से पूर्व आखरी बार पागल कहा गया है।

और यह पहला प्रसंग

बड़े पैमाने पर हमें पहली बार जब पागल कहा गया, वह प्रसंग मुझे स्मरण है। चुनाव हो गये थे। उत्तर प्रदेश में कांग्रेस हार चुकी थी। यह दूसरे

चुनाव की बात है । उस समय अपने (स्व०) श्री रामनरेश सिंह, (बड़े भाई जी) एम.एल.सी. थे । जहाँ संविद सरकार होती है वहाँ मंत्री (मिनिस्टर) बनने की होड़ रहती है । अपने बड़े भाई उस होड़ में नहीं थे । उन्हें उससे कुछ लेना देना भी नहीं था । वे मात्र एम.एल.सी. थे और वह भी इसलिए कि भारतीय मजदूर संघ का कार्य वे बढ़ा सकें । उनको पता भी नहीं था कि उन्हें मंत्री बनाने की चर्चा हो रही है । अन्य लोगों ने ही सोचा कि श्रम मंत्रालय के लिए श्रम मंत्री के रूप में बड़े भाई उपयुक्त व्यक्ति हैं । सोचा कि उन्हीं को कबीना स्तर का श्रम मंत्री बनाना चाहिए । सभी की यही राय बनी । जनसंघ के लोगों ने कहा कि ठीक है, एक बार हम उनसे औपचारिक रूप से पूछ लेते हैं । मिनिस्टर तो उन्हें बनना ही है, वे ना तो कहेंगे नहीं ।

फिर जनसंघ वाले गए बड़े भाई के पास । उन सभी की बात सुनकर बड़े भाई ने कहा कि—भाई ! इसका निर्णय मैं तो नहीं कर सकता । ठेंगड़ी जी इसका निर्णय ले सकते हैं । जनसंघ वाले बोले कि अरे, इसमें क्या है ? ठेंगड़ी जी ना कहेंगे क्या ? अपना आदमी मिनिस्टर बनेगा तो ऐसा मौका कौन छोड़ेगा ? बड़े भाई फिर बोले कि यह शायद इतना सरल नहीं है, इसमें संशय है । आप उन्हीं से एक बार अनुमति ले लें ।

उस समय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की दीपावली बैठक बंगलौर में थी । तो हवाई जहाज से आना और जाना, केवल हमसे मिलने के लिए, यह सोचकर कि अनुमति तो मिल ही जायेगी । वे आए । हमसे मिले, बोले कि ठेंगड़ी जी आपके लिए शुभ समाचार है, हमने पूछा क्या है ? बोले, बड़े भाई का नाम मंत्री पद के लिए सभी पार्टियों ने सर्वसम्मति से मान लिया है । अब वे कबीना स्तर के श्रम मंत्री बनेंगे । मैंने कुछ बोला नहीं, वह बोले औपचारिक रूप में मैं आप की अनुमति माँगने के लिए लखनऊ से यहाँ आया हूँ—मैंने कहा कि आपने यह बड़ा गलत काम किया है । एक तो आपने बड़े भाई को मंत्री बनाने की बात सोच ली और फिर हमारी अनुमति माँगने के लिए आए हैं ? हमारी दृष्टि से यह आपने भारी गलती की है । वे बोले—क्यों ? मैंने कहा कि मैं बड़े भाई को मिनिस्टर बनाने की अनुमति नहीं दे सकता । वे आश्चर्य से मेरी ओर देखने लगे । उनकी आँखों में जो भाव था उससे लग रहा था कि वे मुझे पागल समझ रहे हैं । मानों वे सोच रहे थे कि इसका (मेरा) दिमाग खराब हो गया है । पागल आदमी की ओर जैसा देखते हैं वैसा ही वे मेरी ओर देख रहे थे । वे बोले कि ठेंगड़ी जी, आप क्या बोल रहे हैं ? आप मजाक तो नहीं कर रहे ? मैंने कहा—नहीं । यह मजाक की बात नहीं है । तो बोले—बड़े भाई श्रम मंत्री नहीं बनेंगे ? आप उनको अनुमति नहीं देंगे ? सोच-समझकर बोल रहे हैं क्या ? मैंने कहा हाँ, मैं सोचकर बोल रहा हूँ । वे फिर बोले कि आपका व्यक्ति श्रम मंत्री बनेगा तो उत्तर प्रदेश में भारतीय मजदूर संघ नम्बर एक पर आ जाएगा ।

मैंने कहा कि मजदूर संघ की चिंता मैं करूँगा, आपको चिंता नहीं करनी है। बड़े भाई लेबर मिनिस्टर नहीं बनेंगे क्योंकि हमें भारतीय मजदूर संघ को जिन्दा रखना है। यह बात वे समझ नहीं सके। वे असमंजस्य में पड़ गए, क्योंकि उनकी अपेक्षा के यह सब विपरीत हुआ था। वे सबको कह आए थे कि यह मात्र औपचारिकता है हम अनुमति लेकर ही लौटेंगे। उधर तो सूची भी बन चुकी थी। दूसरे दिन घोषणा होनी थी। सांयकाल के वायुयान से उन्हें लौटना था।

उन्होंने मन में सोचा कि एक आखरी धक्का और लगा लें। अत: भोजन के बाद पुन: मेरे पास आए और बोले कि ठेंगड़ी जी, जरा यहाँ से हटकर बगल में चलें, कुछ खास (प्राइवेट) बात करनी है। जरा हटकर बात होने लगी तो बोले—ठेंगड़ी जी, ये सरकार और मंत्री और मजदूर संघ वगैरह सब छोड़ दें। लेकिन मैं आपका व्यक्तिगत हित चिंतक हूँ। अत: मात्र सतर्क कर रहा हूँ कि बड़े भाई को आप मंत्री बनने की अनुमति नहीं देंगे तो आपके एवं बड़े भाई के सम्बन्ध बिगड़ जाएँगे। सभी को पता है कि मैं मात्र आपकी अनुमति लेने आया हूँ और वहाँ पहुँचकर यदि मैं सबको कहूँगा कि बड़े भाई मंत्री नहीं बनेंगे, आपने (ठेंगड़ी जी) रोड़ा डाला है, अडंगा डाला है, तो बड़ी गड़बड़ होगी। बड़े भाई तो इतने क्रोधित होंगे कि उनके जीवन में इतना अच्छा सुनहरी मौका आया था और आपने उसमें रोड़ा अटकाया। तो फिर आपके तो आपस के सम्बन्ध ही बिगड़ जायेंगे।

मैंने उस समय उनसे और कुछ नहीं कहा। इतना ही कहा कि जो होगा वह हम आपस में देख लेंगे, आप इसकी चिंता न करें। वे वापस गये और बड़े भाई मिनिस्टर नहीं बने। इस घटना के छ: मास बाद मैं लखनऊ गया। उन्होंने पहले से ही कह रखा था कि ठेंगड़ी जी के लखनऊ आने पर सर्वप्रथम मैं उनसे मिलूंगा। वे आए, बोले—ठेंगड़ी जी, मैं आपसे कुछ स्पष्ट रूप से बोलना चाहता हूँ आप गुस्सा न करें। मेरे मन में आपके प्रति बहुत आदर है, लेकिन मैं उस दिन भी सोच रहा था और आज भी सोचता हूँ कि जब अपना आदमी मिनिस्टर बन रहा हो तो उसे मंत्री न बनने देना, यह निरा पागलपन है। इसका मतलब यह नहीं है कि मेरे मन में आपके प्रति आदर नहीं है, आदर तो पूरा है। उस समय मुझे आपकी बात का बहुत आश्चर्य लगा था लेकिन आज मैं आपसे दूसरी बात करने आया हूँ। मैंने पूछा क्या है? तो बोले कि उस समय मुझे जो आश्चर्य हुआ था उससे दुगना आश्चर्य मुझे लखनऊ लौटने पर हुआ। मैं जब बड़े भाई के फ्लैट पर जाकर उनसे मिला तो मैं सोच रहा था कि यह दुखद् समाचार उन्हें कैसे सुनाऊँ? जैसे किसी की मृत्यु हो जाती है और जब वह दुखद् सूचना देनी होती है वैसे ही। परन्तु मैं प्रस्तावना कर ही रहा था कि बड़े भाई तपाक से बोले कि भाई सीधे-सीधे बताओ कि ठेंगड़ी जी ने अनुमति नहीं दी। मैंने कहा कि जी हाँ, मैं यही कहने वाला था। तो बड़े भाई बोले कि मैं पहले से ही जानता था इसीलिए तो आपको वहाँ भेजा था। मुझे उस समय

बड़े भाई का निर्विकार चेहरा देखकर अत्यधिक आश्चर्य हुआ। न, उस पर कोई निराशा का भाव, न दुख का और न ही क्रोध का भाव। कुछ ऐसा भाव जैसे यह सब तो चलता ही रहता है। उनकी इस बात पर मैंने उनसे कहा कि यह जो मैं पहले ही आपको कहना चाहता था पर कहा नहीं, सोचा कि अनुभव लेने देना ही ठीक है। देखिये आप सब लोग व्यवहार-चतुर हैं। हमारा तो यह पागल लोगों का जमघट है। यहाँ की सायकॉलोजी को समझने में आपको थोड़ा समय लगेगा। तो आखिरी प्रसंग कि तुम पागल हो यह आप लोगों के लिए आज से 3–4 दिन पूर्व आया और हमारे लिए वह पहला अवसर जब हमें बड़े पैमाने पर पागल कहा गया, वह यह था। तो मैंने इस सिलसिले में पहला और आखिरी प्रसंग आपको बताया। वैसे तो ऐसे कई प्रसंग हैं जब लोगों ने हम लोगों को पागल कहा और हम भी कहते हैं कि हमारा यह पागल लोगों का जमघट है। आखिर यह पागलपन क्यों है ? यह भी सोचना आवश्यक है।

परम वैभव की कल्पना

आजकल यह मान्यता है कि "राजनैतिक सत्ता" सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तु है। यहाँ तक कि कुछ लोग तो राजनैतिक सत्ता को ही परम वैभव मानते हैं। बीच में एक बार जब चुनाव के कुछ नतीजे आए थे, तब हमारे एक राजनैतिक मित्र हमारे पास आए। कहने लगे—ठेंगड़ी जी, बड़ा क्रूशियल मोमेंट है (परीक्षा की घड़ी) संघ परिवार की कई संस्थाएँ हैं—विद्यार्थी परिषद, किसान संघ, भारतीय मजदूर संघ—आदि। आप सभी के प्रमुखों की एक बैठक बुलाइये और मास्टर प्लॉन बनाइये कि अब एक लम्बी छलांग लगानी है। मैंने पूछा—छलांग कहाँ लगानी है ?!! वे बोले—प्राइममिनिस्टरशिप तक। वे अच्छे, बड़े आदमी हैं। मैंने उनसे कहा—ऐसा है जी, कि लम्बी छलांग लगाने के लिए पैर, घुटने वगैरह बड़े मजबूत चाहिए। हमारे इतने मजबूत नहीं हैं। यह काम हमसे नहीं होगा। अच्छा हो कि यह काम आप ही करें। हमें तो बस हमारा वेतन, मंहगाई भत्ता आदि ठीक मिलता रहे, बोनस का पैसा बढ़ा दीजिये, इसी में हम खुश रहेंगे। प्राइममिनिस्टरशिप वगैरह बड़ी बातें हैं वह आप ही देख लें।—वे थोड़ा नाराज हो गये। बोले—मेरी बात आप मजाक में मत लीजिये। मैंने कहा—ऐसा नहीं, मैं तो बड़ा सीरियसली (गम्भीरता से) बोल रहा हूँ। इस पर उन्होंने पुनः मुझे क्रॉस एक्जामिन किया (पुनः टटोला) बोले, परम वैभव अपना ध्येय है, इसे आप मानते हैं न ? यदि मानते हैं तो मास्टर प्लान अवश्य ही बनाइये। मैंने कहा कि क्या आप प्राइममिनिस्टरशिप और परम वैभव दोनों को समान मानते हैं ? प्रधानमंत्री पद प्राप्त करने को ही आप परमवैभव मानते हैं ? परम वैभव माने प्रधानमंत्री बनना क्या यही आपका समीकरण है ? तो वह बोले, और क्या हो सकता है ? तो फिर हमने उनसे कहा कि आप मेरी बात ठीक से सुन

लीजिए। ऐसा है कि **राष्ट्र चिरंतन है, सरकारें चिरंतन नहीं हैं। हमारे देश में कितनी ही सरकारें आईं और गईं। कई राजा आए, चक्रवर्ती आए, सुल्तान आए, बादशाह आए, वायसराय आए, आये और सब चले गये। सरकारें तो बदलती रहती हैं, जहाँ डिक्टेटरशिप (तानाशाही) है वहाँ खूनी क्रांति के माध्यम से और जहाँ लोकतंत्र है वहाँ बैलेट बॉक्स के माध्यम से—वोट के माध्यम से ये सरकारें बदलती रहती हैं।** मैंने उन्हें कहा कि दुनिया में एक भी ऐसा उदाहरण बताइये कि लोकतंत्र में एक ही पार्टी 500 साल तक, 300 साल या 100 साल तक हुकूमत में रही हो। एक ही पार्टी 50 साल तक लगातार हुकूमत में रही हो। जिस ग्रेट ब्रिटेन का नमूना हमने अपने यहाँ लाया है वहाँ भी लेबर पार्टी है, कनजरवेटिव पार्टी है, लिबरल पार्टी है। वहाँ इनमें से कभी यह तो कभी दूसरी पार्टी सत्ता में आती है। यह सब तो चलता ही रहता है। और मान लिया कि आपकी पार्टी सत्ता में आ गई तथा आपने हमको प्रधानमंत्री बनाया, तो इससे हमें तो खुशी होगी। हम यह चाहते भी हैं लेकिन ऐसा कोई करता नहीं है। फिर भी मानों कुछ चक्र चला और आपके ठेंगड़ी जी प्रधानमंत्री बन गए। तो क्या आपकी कल्पनानुसार राष्ट्र का परम वैभव आ गया? लेकिन अगले चुनाव में हम यदि हार जाते हैं और लोग हमें धक्के मारकर प्रधानमंत्री पद से हटा देते हैं तो फिर आपके परम वैभव का क्या होगा? तो क्या यह आने जाने वाला परम वैभव आप चाहते हैं?! अथवा क्या आप गारण्टी देकर कह सकते हैं कि सौ साल तक एक ही पार्टी पॉवर में रहेगी? ऐसा कभी हुआ है क्या? उमर खैय्याम ने इस बारे में कहा है कि **"यह दुनिया एक धर्मशाला है। दिन और रात, यह उस धर्मशाला के दरवाजे हैं। इस धर्मशाला में कितने ही सुलतान आते हैं, एक दो या चार दिन ठहरते हैं और फिर यहाँ से चले जाते हैं, लेकिन यहाँ कोई टिकता नहीं।"** हमने कहा कि हम सब का भी यही हाल है।

मैंने फिर पूछा कि बताइये—कैसा परम वैभव है आपका? यह आने जाने वाला परम वैभव है क्या? वे बोले कि—लेकिन आपने हिन्दुस्तान को सुपर पॉवर बनाना है या नहीं? मैंने कहा—यह नया फॅशनेबुल शब्द है। सुपर पॉवर तो रूस को भी कहते थे। आज उसका क्या हाल है? लेकिन हमारी जब बातचीत हुई थी उस समय रूस के साम्यवाद का पतन नहीं हुआ था। फिर भी मैंने कहा—सुपर पॉवर की कल्पना ठीक है लेकिन उसका जीवनकाल कितना रहेगा इसका विचार किया है क्या? मैंने उनको काल खण्डों की गिनती कर बताया कि इजिपशियन एंपायर, बेबोलियन एंपायर, थाईलियन साम्राज्य, ब्रिटिश साम्राज्य, जर्मन साम्राज्य, स्पॅनिश, पोर्तुगीज, रोमन-ग्रीक आदि साम्राज्य कितने शताब्दि तक रहे। कम से कम रहने वाला जर्मन साम्राज्य छः साल तक रहा और अधिक से अधिक काल तक रहने वाला साम्राज्य 350 साल तक रहा है। तो

क्या जब अपने राष्ट्र का परम वैभव आएगा और जब हम सुपर पावर हो जायेंगे तो क्या अपने देश की सुपर पॉवर की सीमा इतनी मात्र आप चाहते हैं ? रूस 1917 में सत्ता की दृष्टि से अस्तित्व में आया और 1989 में वह समाप्त हुआ तो रूस की यह सुपर पॉवर केवल 1945 से 1989 तक कुल 45 वर्ष तक रही। अमेरिका भी अधिक दिनों तक सुपर पॉवर रहने वाला नहीं है। तो आप भारत को परम वैभव पर अधिक काल तक देखना चाहते हैं या सीमित काल तक ? केवल अत्यल्प सीमित समय तक परम वैभव पर रहना यह तो हमारा ध्येय नहीं है।

अंग्रेजों की—इंग्लैंड की—हालत आप भी जानते हैं। ब्रिटिश साम्राज्य में कभी सूर्यास्त नहीं होता, ऐसी कहावत थी (सन नेवर सेटस ऑन दि ब्रिटिश एंपायर) इतना वह साम्राज्य विशाल था। दोनों गोलार्द्धों में साम्राज्य था। अतः सूर्य कहीं ना कहीं रहता ही था। किसी ने इसकी विपरीत व्याख्या ऐसी भी की है कि सूरज को इन पर भरोसा ही नहीं है कि ये ब्रिटिश साम्राज्य वाले सज्जन हैं, वे कब क्या गड़बड़ करेंगे इसका भरोसा नहीं—इसलिए सूर्य हमेशा उस पर निगरानी रखता है—अस्त नहीं होता है। हम छोटे थे तो लोग कहते थे कि जब तक चाँद और सूरज रहेंगे तब तक ब्रिटिश साम्राज्य रहेगा। पर आज उसकी क्या हालत है ? रूस की जब महासत्ता थी तो एक-तिहाई दुनिया में उसका लाल झण्डा लहराता है और शेष दो तिहाई दुनिया में वह शीघ्र ही लहरायेगा—ऐसी बातें चलती थीं। उसकी भी आज क्या हालत है ? खैर उस समय तो रूस के साम्यवाद का जनाजा नहीं निकला था, अतः मैंने मात्र ब्रिटिश साम्राज्य का उदाहरण दिया। पावर में आने के कारण और सुपर पॉवर बनने के कारण ही यदि परम वैभव आता है तो क्या यह आने-जाने वाला परम वैभव नहीं होगा ?

राष्ट्र के पुनर्निर्माण का विचार

परन्तु इसी से वे चकरा गये। बोले कि कुछ समझ में नहीं आता है। फिर यह परम वैभव है क्या ? हमने कहा कि यह एक अलग विषय हो सकता है लेकिन पालिटीकल पावर को परम वैभव नहीं कह सकते हैं। परम वैभव की बात अलग है, लेकिन आज एक फैशन चल पड़ा है—राजनैतिक सत्ता के बारे में चर्चा करने की। जैसे आजकल कोई विज्ञापन आता है तो लोग उसी वस्तु के पीछे पागल हो जाते हैं। कोलगेट या किसी साबुन का विज्ञापन आता है, टी.वी. पर लोग देखते हैं, तो वही चीज प्रचलित हो जाती है। वैसे ही राजनैतिक सत्ता यही एक प्रमुख बात है इस का इतना प्रचार हुआ है कि लोग अब उसी के पीछे पागल होकर दौड़ते हैं। वस्तुतः यहाँ भी सबने अनुभव कर लिया है कि कोई सत्ता अधिक काल तक टिकती नहीं हैं। तो भी सबको मोह हो जाता है। इससे

हम समझ सकते हैं कि इस सम्बन्ध में हमारी भूमिका अलग क्यों है ? कारण इतना ही है कि हम राष्ट्र के पुर्ननिमाण का विचार कर रहे हैं । देश को बलवान बनाना है, दुनिया में नम्बर एक का हमारा राष्ट्र बने ऐसी हमारी आकांक्षा है तो विचार की दिशा यही होगी । केवल मन्त्री बनने का सवाल नहीं है । यहाँ तो कितने ही मन्त्री आज तक बने हैं उनकी कोई गिनती ही नहीं । आज तक केन्द्र में अथवा आपके राज्य में कितने मन्त्री बने हैं उन सभी के हम सबको नाम याद रहते हैं क्या ? जिस समय जो मन्त्री रहता है, उसका बोलबाला रहता है और मन्त्री पद चला जाता है तो उसकी क्या हालत होती है ? !! श्री विद्याचरण शुक्ला मन्त्री थे । उस समय वे श्रीमती इन्दिरा गाँधी के विश्वास पात्र और निकट के माने जाते थे । बल्कि इन्दिरा जी के बाद दूसरे नम्बर के वे माने जाते थे । सब लोग उनकी चापलूसी भी करते थे । वे बड़े प्रभावी थे । सरकार बदल गई तो उनका मन्त्री पद चला गया । उस समय की बात है, मैं भोपाल स्टेशन पर गाड़ी पकड़ने के लिए खड़ा था । शुक्ला जी को देखा कि वे बुक स्टॉल पर अकेले खड़े हैं । जब वे मन्त्री थे तो लोग उनकी चापलूसी करते थे । अगल-बगल घूमते थे । परन्तु इन लोगों में से भी एक दो को मैंने देखा कि विद्याचरण जी वहाँ खड़े हैं यह देखकर वे ऐसा लम्बा रास्ता काट कर गये । उनके पास में नहीं गये । पास से जाते तो नमस्ते करनी पड़ती । ये है राजनैतिक सत्ता का करिश्मा । अतः राष्ट्र निर्माण में इसका कितना महत्व है, कैसा महत्व है—यह विचार करना होगा । टी.वी. पर बार-बार देखे गये विज्ञापन के प्रभाव के वशीभूत जैसे लोग लक्स साबुन या कौलगेट खरीदने के लिए जाते हैं वैसे ही राजनैतिक सत्ता, यही सबसे अधिक वांछनीय बात लगती है ।

राजनैतिक सत्ता के सहारे राष्ट्र का पुर्ननिमाण सम्भव नहीं

यह राजनैतिक सत्ता भी कुछ ही दिनों तक रहती है । कुछ दिन पूर्व इंडिया टुडे में एक लेख छपा था । शीर्षक था—"व्हेयर आर दे टुडे" ? याने वे आज कहाँ हैं ? उस लेख में ऐसे सब लोगों का उल्लेख था कि उस लेख के पूर्व तक रोज समाचार पत्रों में जिनके नाम आते थे और एक दशक के अन्दर ही ऐसी हालत हो गई कि समाचार पत्र उनका नाम तक लेने को तैयार नहीं थे । ऐसे पुण्यश्लोक लोगों के नाम और गिनती उस लेख में थी । तात्पर्य यही है कि सत्ता में कुछ दिनों तक तो बोलबाला रहता है पर बाद में उन्हें कोई पूछता तक नहीं । मुझे लगता है कि यदि आपको कोई एकाएक पूछ ले कि आपके राज्य में शुरू से अब तक कौन-कौन मुख्य मन्त्री रहे—तो आपको सर खुजाना पड़ेगा । एकाध बार प्रसिद्धि मिल जाती है तो व्यक्ति समझता है कि सबसे अधिक वांछनीय बात यही है । तो ऐसी अस्थायी और तात्कालिक प्रसिद्धि के चक्कर में हम क्यों पड़ें ? या फिर बोनस, डी.ए. की मांग, हड़ताल वगैरह के चक्कर में हम क्यों पड़ें,

सीधे उधर सत्ता की ओर ही चले चलते हैं। अतः यह ठीक से समझने की आवश्यकता है कि राजनैतिक सत्ता के सहारे राष्ट्र का पुनर्निर्माण संभव ही नहीं है। दुनिया के इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है कि कोई राष्ट्र राजनैतिक सत्ता के सहारे बड़ा हो। हाँ ऐसा हुआ है कि राजनैतिक सत्ता का साधन के रूप में उपयोग किया गया है। उपयोग करने वाले अलग लोग थे, पालिटीकल पावर यह साधन था। इतिहास का अध्ययन करेंगे तो ध्यान में आएगा कि—**सर्वसाधारण नागरिक की राष्ट्रीय चेतना का स्तर—यही आधार है राष्ट्र के पुनर्निर्माण का—प्राइमिनिस्टरशिप नहीं। राष्ट्रीय चेतना का स्तर ऊँचा नहीं है तो पालिटीकल पॉवर से कुछ नहीं हो सकता है। और यदि राष्ट्रीय चेतना का स्तर अच्छा है तो पालिटीकल पॉवर का अच्छी ताकत के रूप में उपयोग हो सकता है यदि यह स्तर ऊँचा है तो उनमें से स्वाभाविक रूप से राष्ट्रीय चेतना से युक्त नागरिकों के स्वायत्त, स्वयं-शासित, । (आटोनॉमस, सेल्फ गव्हार्नेड) जन संगठन खड़े हो जाते हैं और ऐसे जन संगठन जब खड़े हो जाते हैं तभी सही मायनों में नैतिक नेतृत्व का उदय होता है। जब तक ऐसे जन संगठन प्रबल नहीं होंगे, नैतिक नेतृत्व का उदय नहीं हो सकता है।**

नैतिक नेता, नैतिक नेतृत्व

नैतिक नेता और नैतिक नेतृत्व दोनों में थोड़ा अन्तर होता है। नैतिक नेता तो हमारे देश में हमेशा ही रहे हैं। लेकिन नैतिक नेतृत्व का अर्थ होता है—सभी नैतिक नेताओं को लेकर उनके सामूहिक नेतृत्व की भूमिका। देश का नेतृत्व नैतिक नेता कर रहे इसको नैतिक नेतृत्व कहते हैं। स्वराज्य प्राप्त हुआ, कांग्रेस में महात्मा जी की भूमिका सबसे बड़ी रही। लेकिन जैसे ही कांग्रेस के हाथ में सत्ता आई तो सत्ता आते ही कांग्रेस की कल्चर बदल गई। उस समय अमरीकी पत्रकार नील फिशर गांधी जी से मिलने गए। उन्होंने लिखा है कि महात्मा जी रोते थे, अक्षरसः रोते थे, और कहते थे कि, "मैं अपनी हालत का क्या वर्णन करूं? मेरी क्या हालत हो गई है। कल तक जो मेरे शिष्य रहे वह आज मेरी बात तक सुनने के लिए तैयार नहीं।" और कहीं यदि ऐसा विषय आया गांधी जी की सलाह लेने का तथा उन्हें जिसमें लगता था कि गांधी जी की अनुमति अपने अनुकूल नहीं होगी तो गांधी जी की सलाह के बिना ही काम करते—सीधे ही बिना पूंछे घोषणा कर देते थे। हमने भी देखा है कि 1977 में कांग्रेस को हटाकर जो जनता सरकार आई थी तो उस समय किसी राजनैतिक दल को वोट नहीं मिला था। वोट जयप्रकाश नारायण जी को मिला था। जय प्रकाश जी के अनुशासन में चलने वाले ये लोग हैं ऐसा सोचकर उन्हें वोट दिया गया था। किसी राजनैतिक नेता या राजनैतिक दल को यह वोट नहीं था। इसी कारण प्रधानमंत्री का चुनाव भी बड़े अनोखे ढंग से हुआ। वैसा

सिर्फ हिन्दुस्तान में ही हो सकता है, अन्यत्र नहीं। आज की कमजोर स्थिति में भी निर्वाचन की यह पद्धति केवल अपने देश भारतवर्ष में ही सम्भव हो सकती है। सभी संसद सदस्यों के सामने बात रखी गई कि मीटिंग में वोट डालकर प्रधानमन्त्री का चुनाव होगा। तो सबने कहा कि नहीं जैसा जय प्रकाश जी कहेंगे वैसा ही होगा, उनकी राय से प्रधान मन्त्री बनेगा। फिर आचार्य कृपलानी और एक अन्य वृद्ध नेता—दोनों एक कमरे में बैठे। एक-एक कर संसद सदस्य कमरे में जाते और अपनी राय उनको बताते। बाद में इन दो वृद्ध नेताओं ने फैसला सुनाया और मोरारजी भाई देसाई प्रधान मन्त्री बने। इसका अर्थ है कि लोगों ने जे.पी. को वोट दिया था। लेकिन जब जयप्रकाश जी मृत्युशैया पर थे, तो उनके आशीर्वाद से चुने गए राजनेताओं को, मन्त्रियों को, एक को भी उनसे मिलने का समय नहीं मिला। यह सभी राजनेता बहुत व्यस्त रहते हैं इसलिए इनको उनको देखने तक की फुरसत नहीं हुई। इसका अर्थ है कि नेता तो हैं लेकिन नैतिक नेतृत्व नहीं है। याने सर्वसाधारण लोगों का नैतिक स्तर जब ऊँचा होता है तब उनके स्वायत्त, स्वयंशासित जन संगठन का नैतिक नेतृत्व भी खड़ा हो जाता है। इसी को हमारे यहाँ धर्मदण्ड कहा गया।

धर्मदण्ड की आवश्यकता

यह धर्मदण्ड बड़ा आवश्यक होता है। सरकार हाथी के समान होती है। हाथी बहुत बलवान है इसमें कोई शक नहीं। वह जितनी मात्रा में ताकत के बड़े-बड़े काम करता है, उतने दूसरा कोई नहीं कर सकता है। लेकिन हाथी यदि पागल होकर एक दम निरंकुश हो जाये और हमारा हरा-भरा बगीचा उजाड़ने लगे यो क्या हम भगवान से यह प्रार्थना करेंगे कि हे भगवान्, हाथी साहब का मूड अच्छा रखें अन्यथा हमारा बगीचा ही उजड़ जायगा। यह तो कोई अच्छा उपाय नहीं है। हाथी सबसे अधिक बलवान है और हमको उसकी शक्ति का उपयोग भी करना है इसलिए अंकुश की व्यवस्था हमने की है। केवल हाथी के मूड पर सब कुछ छोड़ा नहीं जा सकता है। हाथी अच्छा है, लेकिन वह सब अच्छा ही करेगा इसकी गारंटी भी चाहिए। इसीलिए व्यवस्था है कि उस पर अंकुश रखा जाता है। हाथी जब तक ठीक से चलता है तो अंकुश दबाने की आवश्यकता नहीं होती। और वह जब गड़बड़ करे तो अंकुश दबाया जाता है, जिससे वह चिघाड़ता है और ठीक से काम करने लगता है। **अंकुश पकड़कर महावत हाथी के गंडस्थल पर बैठता है, इसी तरह सर्वसाधारण नागरिकों की राष्ट्रीय चेतना का स्तर यह आधार, और स्वायत्त, स्वयंशासित जन संगठन यह अंकुश, और इस अंकुश को पकड़कर हाथी के गंडस्थल पर बैठा हुआ महावत माने नैतिक नेतृत्व (moral leadership) अर्थात् धर्मदण्ड।** हमारे यहाँ हमेशा राजदंड के ऊपर धर्मदण्ड की कल्पना की गई है। राजा को कभी सुप्रीम पॉवर

याने सर्वोच्च शक्तिमान नहीं माना गया। कानून बनाने का अधिकार राजा को या शासन को नहीं है। शासन को मात्र "गार्जियन ऑफ दि कांस्टिट्यूशन" (संविधान का पालक या संरक्षक) कहा गया है। लेकिन कांन्स्टिट्यूशन बनाने का अधिकार शासन को या राजा को नहीं दिया है। यह अधिकार नैतिक नेताओं को दिया गया। ऐसे लोगों को दिया कि जिनके पास न आर्थिक सत्ता है, न शासकीय सत्ता है पर जो लंगोटी लगाकर जंगल में घूमते हैं या गरीब के नाते नगरों में रहते हैं। लेकिन उनके विषय में सभी लोगों के मन में यह विश्वास है कि वे स्वार्थी नहीं हैं, सज्जन है, सम्पूर्ण समाज का विचार करते हैं। जिनकी कोई गुटबन्दी नहीं है। जिनके मन में यह अपना है वह पराया है, यह भाव नहीं है। "अयं निजो परोवेत्ति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानांतु वसुधैव कुटुम्बकम्"। सारी दुनिया हमारा परिवार है—ऐसा जो मानते हैं। और सारा संसार ऐसा स्वीकार भी करता है कि ये लोग ऐसे हैं, इस कारण इनका शब्द सर्वमान्य होता है—राजा का नहीं, पूंजीपतियों का नहीं। लंगोटी लगाने वालों का शब्द ही सर्वमान्य होता है। जनता उनके ही शब्दों को सबसे अधिक सम्मान देती है। ऐसे लोगों को ही हमारे यहाँ संविधान बनाने का अधिकार रहा है। स्मृतियाँ राजाओं ने नहीं बनाई। स्मृतियाँ लंगोटी वालों ने बनाई हैं। और इतना ही नहीं तो अपने संविधान में राजा के कर्तव्य क्या हैं, उसको क्या करना चाहिए यह लिखने का काम, राजधर्म बनाने का काम भी लंगोटी वालों ने ही किया है। और यदि कोई राजा उन्मत्त होकर लंगोटी वालों के लिखे संविधान का उल्लंघन करता है तो हमारे धर्मशास्त्रों की आज्ञा है कि जनता ने विद्रोह करके उस राजा की हत्या कर देनी चाहिए, यहाँ तक हमारे यहाँ व्यवस्था है। इस तरह से धर्मदण्ड सबसे ऊपर है, उसके अन्तर्गत राजदंड चलेगा तो समाज में सब ठीक चलेगा। राजदण्ड सबसे ऊपर है यह कल्पना भौतिकता प्रधान पश्चिम की है। यह हमारी कल्पना नहीं है।

यदि राज्यसत्ता सर्वप्रमुख हो जाय, लोगों में राष्ट्रीय चेतना नहीं रहे तथा जनसंगठन नहीं खड़े हों और समाज में धर्मदण्ड का, नैतिक नेतृत्व का उदय नहीं हुआ हो, सर्वत्र शासन ही सर्वशक्तिमान दिखाई देता हो तो क्या परिणाम होगा? लोग कहते हैं कि लोकतंत्र के संविधान में गारण्टी है लोक स्वातंत्र्य की। लेकिन हिटलर की तानाशाही वोट के बक्से से ही आई थी। फ्रेंच राज्यक्रांति के सर्वश्रेष्ठ नेता थे रॉबिस स्पेउर। उन्होंने राज्यक्रांति के पूर्व ऐसा कहा था कि जिस प्रकार का लोकतंत्र का ढाँचा इंग्लैण्ड में आ रहा है, उसमें यह भी व्यवस्था है कि लोक निर्वाचित प्रतिनिधि आपस में मिलकर यदि षड्यन्त्र करते हैं—जनता के खिलाफ, जनता को अंधेरे में रखकर, तो वे सब मिलकर जनता पर तानाशाही थोप सकते हैं। 1975 में हमने भी अनुभव किया है कि लोकतंत्र, संसद, संविधान सबके होते हुए भी इंदिरा गाँधी ने संसद का ही उपयोग करते

हुए, उसकी सम्मति से और उसके माध्यम से तानाशाही—इमरजंसी—लायी थी। हजारों को जेलों में ठूंस दिया था। हजारों परिवार बरबाद कर दिये गये। और यह सब संसद की अनुमति से किया गया। इसका स्पष्ट अर्थ है कि लोक-तंत्र और संविधान होने मात्र से ही लोकतंत्र बचेगा, इसकी कोई गारण्टी नहीं है। लोकतन्त्र रहते हुए भी तानाशाही आ सकती है।

शासन की विचित्र प्रकृति

इसका कारण है कि शासन का भी अपना एक स्वभाव है। उसकी अपनी एक प्रकृति है—सेल्फ एक्सपेंशन और सेल्फ परपेच्युएशन की। एक्सपेंशन का अर्थ है विस्तार। अपने अधिकारों का दायरा अखण्ड बढ़ता रहे, अधिक से अधिक विषय मेरे अधिकार-क्षेत्र में रहे, यह इच्छा। और सेल्फ परपेच्युएशन माने मैं अखण्ड सत्ता में रहूँ यह इच्छा। प्राचीन काल में कुछ लोग कहते थे कि "शासक: मुनि वृत्तिनाम्"। राजा जब प्रौढ़ हो जाते थे तब राजसत्ता छोड़कर जंगल में जाते थे, वानप्रस्थ लेते थे, मुनि बन जाते थे। आज मुनि बनने के लिए किसी को भी फुर्सत नहीं है। आजकल तो वह सोचते हैं कि मंत्री पद की कुर्सी से ही सीधे "रामनाम सत्य हो",—सीधे वहाँ से शमशान घाट जाएँ। यह है "सेल्फ परपेच्युएशन"। सेल्फ एक्सपेंशन और सैल्फ परपेच्युएशन, यह सत्ता के स्वाभाविक गुण नहीं हैं। धर्मदण्ड के कारण इस वृत्ति पर नियन्त्रण रखा जाता है। और धर्म के कारण जो धर्म-प्रवण मनुष्य हैं वह इन दोषों से बच सकता हैं। ऐसे लोगों को राजर्षि कहा जाता है। हमारे यहाँ राजा जनक या रघुवंश के लोग हुए हैं। प्राचीन काल में तो ऐसे सभी थे जो राज्य पद छोड़ देते थे और मुनिवृत्ति धारण करते थे, वानप्रस्थ लेते थे। पश्चिम में भी ऐसे लोग हुए हैं, जैसे जार्ज वाशिंगटन। ऐसे कई श्रेष्ठ लोग हुए हैं, परन्तु थोड़े हैं। किन्तु सर्वसाधारण प्रवृत्ति क्या है ? थोड़े राजर्षि हो सकते हैं लेकिन सर्वसाधारण में तो वह सैल्फ ऐक्सपेंशन और सैल्फ परपेच्युएशन की वृत्ति है। अतः राजनीति कैसे चले, सत्ता परिवर्तन किस ढंग से हो, इसका भी नियम भगवान ने बताया है। आध्यात्मिक क्षेत्र में जो भगवान ने बताया है वह सभी क्षेत्रों पर लागू होता है। राजनैतिक क्षेत्र पर भी लागू होता है। भगवान ने बताया है कि व्यक्ति ऊपर कैसे जाता है, नीचे कैसे आता है। तो ऊपर और नीचे आने-जाने की प्रक्रिया इस प्रकार से भगवान ने बतायी है—

> **त्रैविद्या मां सोम पाः पूत पापा, यज्ञैरिष्टवा स्वर्गति प्रार्थयन्ते।**
> **ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्र लोकनश्नन्ति दिव्यान्दिवि देव भोगान्॥ ९/२० गीता**
> **ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं, क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।**
> **९/२१ गीता**

सात्त्विक विद्याओं का अध्ययन करने वाले विद्वान, तपश्चर्या माने आत्म क्लेश बर्दाश्त करने वाले, हवन करने वाले, जनसेवा करने वाले, सोमपान करने वाले लोग भगवान से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवान ! हमें स्वर्ग की प्राप्ति हो । तपश्चर्या जब पूर्ण हो जाती है तो पुण्य बढ़ जाता है और पुण्य बढ़ने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है । इस स्वर्ग में जाने की सीढ़ी क्या रही है ? तपश्यचर्या, आत्म क्लेश, जनसेवा, होमहवन । यह सब स्वर्ग प्राप्त करने की सीढ़ियाँ हैं । और फिर स्वर्ग में जाने के बाद ते-त्वं भुक्तवा स्वर्गलोके विशालम् ।—स्वर्ग-लोक में उपभोग्य वस्तुएँ मिल जाती हैं । तपश्चर्या, आत्मक्लेश आदि के समय उपभोग की बात ही नहीं रहती है । स्वयं को कष्ट देने की बात रहती है । पर स्वयं को कष्ट देने से जब स्वर्ग में पहुँचने पर उपभोग्य वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में दिखाई देती हैं । भगवान ने कहा है कि तब इसके मन में विचार आता है कि स्वर्ग में तो पहुँच ही गये । यहाँ उपभोग्य वस्तुएँ भी हैं, तो क्यों न उनका उपभोग किया जाय । धीरे-धीरे उपभोग लेना शुरू होता है । फिर उसकी प्रवृत्ति बढ़ती जाती है । उपभोग का चसका लग जाता है । और जैसे-जैसे उपभोग बढ़ता जाता है, पुण्य क्षीण होता जाता है । जिस सीढ़ी से स्वर्ग में पहुँचे थे, वह सीढ़ी पुण्य की, तपश्चर्या की क्षीण हो जाती है । फिर मन में भी यह एक प्रकार की निर्भयता आती है कि मैं अधिक से अधिक उपभोग लूँगा तो मेरा कौन क्या बिगाड़ेगा और उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ जाती है । फिर "क्षीणे पुण्ये मर्त्य-लोके विशन्ति"—पुण्य पूरी तरह क्षीण होने पर पुनः मृत्यु लोक में जाना पड़ता है । (बैंक टु दि कान्स्टिटयूऐंसी) फिर से निर्वाचन क्षेत्र में वापिस आना पड़ता है । ऐसा भगवान ने कहा है । राजनीति में भी यही नियम है । उनको स्वर्ग से धरती पर आना पड़ता है और इनको अपने ग्रह निर्वाचन क्षेत्र में वापिस जाना पड़ता है ।

मोह पर विजय पाने वाले इक्के दुक्के ही महर्षि होते हैं, जिनको राजर्षि कहा जाता है । सभी राजर्षि नहीं होते हैं । अतः अंकुश की आवश्यकता होती है । यदि अंकुश न हो, धर्मदण्ड न हो और मैं यदि प्रधानमंत्री बन जाऊँ, तो मेरा भी पतन होगा । यदि धर्मदण्ड न हो, लोकशक्ति खड़ी हुयी न हो, जनशक्ति न खड़ी हो । जो जनसंगठन हैं वह यदि कमजोर हों, राष्ट्र शक्ति कमजोर हो । और समाज की ऐसी दुरावस्था में मैं ठेंगड़ी जी, यदि प्रधानमंत्री बन जाऊँ तो मैं भी अवश्य ही भ्रष्टाचार करूँगा । यह मैं आश्वासन देना चाहता हूँ । और आप मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेंगे ।

धर्मयुक्त भाषण देने में और प्रधान मंत्री बनने के बाद के चरित्र में यदि जनशक्ति प्रबल न हो तो कोई सम्यक सम्बन्ध नहीं रहता है । प्रधान मंत्री बनने के उपरान्त किसी के भी मन में आ सकता है कि मैं भ्रष्टाचार क्यों नहीं करूँ । और जनशक्ति प्रबल न होने के कारण आप इस भ्रष्टाचार करने की प्रवृत्ति को

रोक नहीं पायेंगे। यदि विश्वामित्र का पतन हो सकता है तो ठेंगड़ी जी का भी होगा। अथवा किसी का भी हो सकता है। तो जनसंगठन मजबूत नहीं है, जनशक्ति नहीं है, अंकुश नहीं है। नैतिक नेतृत्व का उदय नहीं हैं, धर्मदण्ड का उदय नहीं है, तब प्रधानमंत्री बनने के बाद किसी का भी पतन हो सकता है। वह भ्रष्टाचार में लिप्त हो सकता है। लेकिन इसके विपरीत यदि राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ है, सर्वसाधारण नागरिक राष्ट्रीय चेतना से युक्त हैं, इस राष्ट्रीय चेतना से युक्त नागरिकों के स्वायत्त स्वयंशासित जनसंगठन खड़े हुए हैं, उसके कारण नैतिक नेतृत्व अर्थात् धर्मदण्ड का उदय हुआ है, जनशक्ति जाग्रत है। तो यदि नक्सलवादी भी प्रधानमंत्री बनेगा तो उसे भी झख मारकर हैडगेवार भवन में आना पड़ेगा। कोई भी राष्ट्रीय नीति तय करने से पहले नक्सलवादी भी यदि प्रधानमंत्री बन जाय तो उसको हैडगेवार भवन में आना होगा, अन्यथा उनको भी राष्ट्रीय नीति तय करना सम्भव नहीं होगा। लेकिन यह प्रकृति राजसत्ता की नहीं होती। इसीलिए अपने यहाँ प्रारम्भ से ही धर्मप्रवण शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका अर्थ इतना ही है कि सर्वसाधारण व्यक्ति राष्ट्रीय चेतना से युक्त हों। स्वायत्त स्वयंशासित जन-संगठन खड़े हों। और राजदण्ड पर धर्मदण्ड का अंकुश हो। जनसंगठन की भूमिका अंकुश की होती है। राजाओं को यह बात ध्यान दिलाने के लिए हमारे यहाँ नियमित विधि थी। पश्चिम के भौतिकता प्रधान सभी राष्ट्रों की आयु केवल 200, 300 अथवा 350 वर्ष की है। हमारा तो सनातन राष्ट्र है अतएव बहुत अनुभवों के बाद अनेक विधि, विधान निश्चित किए गये हैं। अतएव अनेक अनुभव के बाद ही राजदण्ड के ऊपर धर्मदण्ड रहे यह हमने तय किया हुआ है। अब जिनके पास राजदण्ड है वह यदि धर्मदण्ड को मानते ही नहीं तो उनको स्मरण दिलाने के लिए राष्ट्रीय चेतना से युक्त धर्मप्रवर संघ की आवश्यकता होती है। सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना से युक्त व्यवहार को धर्म कहते हैं। और यह धर्मदण्ड सर्वोपरि होता है।

अपने यहाँ विश्व विजय प्राप्त करने वाले राजा को चक्रवर्ती सम्राट् कहा जाता था। चक्रवर्ती सम्राट् के राज्याभिषेक के समय विश्वजीत यज्ञ होता था। विश्वजीत यज्ञ की प्रक्रिया पूरी होने पर ही चक्रवर्ती सम्राट् माना जाता था। परन्तु इस यज्ञ के अन्त में एक अन्तिम विधि ऐसी थी कि वह विधि सम्पन्न होने के उपरान्त ही घोषित किया जाता था कि अब ये चक्रवर्ती सम्राट् हो गये हैं। वह विधि ऐसी थी कि एक बड़े विशाल मैदान में जन-समूह से घिरे बड़े ठाट-बाट के साथ अपने राज्य सिंहासन पर यह चक्रवर्ती सम्राट् बैठते थे, उनके बगल में एक लंगोटी वाले संन्यासी अपने हाथ में पलाश का डण्डा लेकर खड़े हुए हैं। उस समय यह राजा तीन बार घोषणा करते थे, अदंडयोऽस्मि, अदंड-योऽस्मि, अदंडयोऽस्मि। माने मुझे कोई दण्ड नहीं दे सकता है। मैं सर्वोपरि हूँ। इनके इस प्रकार तीन बार घोषणा करने के पश्चात् पलाश दण्ड हाथ में लिए

हुए यह लंगोटी वाले संन्यासी सभी के सामने राजा की पीठ पर तीन बार पलाश दण्ड मारते थे और कहते थे, 'धर्मदण्डोऽसि, धर्मदण्डोऽसि, धर्मदण्डोऽसि'। धर्म तुमको दण्ड दे सकता है। उनके तीन बार ऐसी घोषणा करने के उपरान्त ही उस राजा को चक्रवर्ती सम्राट् घोषित किया जाता था। यह सब प्रतीकात्मक है।

यह रचना रहेगी तो समाज में सन्तुलन रहेगा। यह रचना नहीं रही तो समाज में संतुलन नहीं रह सकता है। इसमें जनसंगठन की भूमिका अंकुश की है। लेकिन आजकल प्रचार का वायुमण्डल है। प्रचार अथवा विज्ञापनों के पीछे भागने की आवश्यकता नहीं है। हमारे मन पर विज्ञापन का शासन हो गया है। वायुमण्डल का प्रभाव हमारे मन पर भी पड़ता है। सबसे वांछनीय बात राजनैतिक सत्ता, प्रधानमंत्री बन गये और बस। प्रचार और विज्ञापन के माध्यम से वायुमण्डल के विशैले कीटाणुओं का इस तरह से मन पर हमला होता है।

यह विषय इन्दौर के अभ्यास वर्ग में भी रखा गया था। वहाँ हमारे एक कार्यकर्त्ता ने प्रश्न पूछा था कि जब राजसत्ता की यह सब गलत भूमिका है तो भारतीय मजदूर संघ अपने हाथ में स्वयं राजदण्ड क्यों नहीं ले लेता है? जिन्होंने यह प्रश्न पूछा था वह हमारे परम मित्र होने के नाते उनका नाम बताने में कोई आपत्ति नहीं है वह हैं आपके राजेश्वर जी। तो राजेश्वर जी ने यह प्रश्न पूछा था और हमने उस समय उनसे कहा था कि हम चाहते हैं कि तुम हाथी का अंकुश बनो और तुम हाथी बनना चाहते हो। राजेश्वर जी ने वह प्रश्न मजाक में ही पूछा था। वैसे वह बहुत समझदार व्यक्ति हैं। तो बाहर के जो विषैले कीटाणु हैं, उनके कारण साध्य-साधन विधेय, कर्म-कारण भाव, आकांक्षा एवं आवश्यकता इसका विपर्यय (constituary) जनता के मन पर हुआ है। विज्ञापन की वजह से, प्रचार के कारण, गलत जीवन मूल्यों की वजह से जीवन मूल्य (values of life) समाप्त होने के कारण कभी-कभी अपने मन पर भी प्रभाव होता है।

हमने ध्यान में रखना है कि देश से समाज बड़ा नहीं हो सकता है। परम वैभव माने poltical power नहीं है। राजनैतिक सत्ता आती है और जाती है। महत्व धर्मदण्ड का है, राष्ट्रीय चेतना का स्तर यह उसका आधार है। तपश्चर्या करने वाले लोग जिनका नैतिक नेतृत्व है, समाज का नियन्त्रण उनके हाथ में होना चाहिए।

राजदण्ड और धर्मदण्ड का आपसी सम्बन्ध

यह नैतिक नेतृत्व, धर्मदण्ड और राजदण्ड के सम्बन्ध में एक कहानी है। इस कहानी से, जो हमको पागल कहते हैं वह काफी कुछ समझ सकेंगे। एक राजा थे। उन पर दूसरे राजा ने हमला किया। लड़ाई हुई, राजा हार गया

और प्राण बचाकर, राज्य छोड़कर जंगल की ओर भागा। भागते-भागते हाँफने लगा, भूख-प्यास से तड़पने लगा, इतने में कहीं दूर आश्रम दिखाई दिया तो वहाँ पहुँच गया। वहाँ एक ऋषि थे। उनको प्रणाम किया और अपनी कहानी सुनाई। ऋषि ने कहा—कुछ आराम कर लो। थोड़ी देर में थकावट कुछ दूर हुई तो पुनः ऋषि से कहा—महाराज प्यास लगी है, भूख लगी है, कपड़े फट चुके हैं। ऋषि बोले—चिंता मत करो। देखो आँगन में वह पेड़ है, उसके नीचे जाकर बैठो और जो चाहिए वह माँग लो, मिल जाएगा। राजा पेड़ के नीचे बैठ गया। बोला, ठण्डा पानी चाहिए—पानी आ गया। भोजन चाहिए, सजी सजायी थाली में मिष्ठान्न सहित भोजन आ गया। नींद व थकान की वजह से झपकी आने लगी तो सोने के लिए बिछौना आ गया। इसको आश्चर्य हुआ कि जो जो चीज माँगो वह मिल जाती है? क्योंकि वह कल्पवृक्ष था। एक दिन राजा के मन में आया कि जो माँगो वही मिल जाता है तो क्या मेरा गया हुआ राज्य भी माँगने पर मुझे वापस मिल जाएगा?! राजा उठकर ऋषि के पास गया और यही प्रश्न किया। ऋषि ने कहा प्रयास करो—पूछ के देखो, वह कल्पवृक्ष है। उसके नीचे बैठने पर प्रत्यक्ष पता चलेगा। राजा ने पेड़ के नीचे बैठकर राज्य वापस मिलने की कामना की। चौबीस घण्टों के अन्दर उस राज्य के कुछ नागरिक दौड़ते हुए आए। बोले—महाराज बड़ा उत्पात हो गया है। जो नये राजा हुए थे, उनके खिलाफ जनता ने विद्रोह कर दिया है। उन्हें भगा दिया है। जनता पुनः आपको ही चाहती है, अतः हम आपको लेने आए हैं। राजा को बड़ा आनन्द हुआ कि चलो राज्य भी वापस मिल गया। पर कल्पवृक्ष की शक्ति देखकर राजा को अधिक ही आश्चर्य हो रहा था, अतः विदाई लेने के लिए राजा ऋषि के पास गया, उनको प्रणाम किया, आभार प्रकट करते हुए कृतज्ञता व्यक्त की और विदाई ली। ऋषि ने भी राजा को विदाई के समय आशीर्वाद दिया। परन्तु राजा गये नहीं, रुक गये। ऋषि ने कहा, अब क्या बात है? राजा बोला—मेरे मन में एक जबरदस्त संदेह है। आपके आँगन में कल्पवृक्ष है, वह भोजन-पानी से लेकर राज्य तक की सभी कामनायें पूर्ण करता है, ऐसी अवस्था में आप सारे ऋषि लोग व्यर्थ की तपश्चर्या और आत्मक्लेश आदि कष्ट क्यों उठा रहे हैं?! हवन, व्रत-उपवास व अनशन क्यों कर रहे हैं? इसकी वजह से सभी दुर्बल, पतले भी हैं। ऋषि ने कहा राजा,—जा कर अपना राज्य चलाओ। यह बात समझने में तुमको समय लगेगा। पर राजा ने कहा महाराज कुछ तो कारण समझाकर बताइये। इस पर ऋषि ने कहा राजा! सुनो—जब तक हम लोग तपश्चर्या कर रहे हैं, आत्मक्लेश सहन कर रहे हैं, तभी तक कल्पवृक्ष में यह शक्ति रहेगी कि वह हर एक की कामना पूर्ण करेगा और जब हम तपश्चर्या आदि बन्द कर देंगे तो कल्पवृक्ष की यह अद्‌भुत शक्ति, सभी की कामनाएँ पूरी करने की वह भी नष्ट हो जाएगी।

(हरीश तिवारी)
प्रदेश मन्त्री
भारतीय मजदूर संघ
उत्तरांचल

धर्मदण्ड और राजदण्ड का यह सम्बन्ध यह यदि हम ध्यान में रखें तो फिर हम पागलपन क्यों लेते हैं, यह समझ में आएगा। कई चीजों में हमारा पागलपन इसी कारण है। छोटी-छोटी बातें हैं, लेकिन उन पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है। सारी दुनिया में मान्यता है कि संस्था यदि बड़ी हो गई तो बैंक बैलेन्स भी बड़ा होना चाहिये। कार्यालय बड़े-बड़े होने चाहिए, वाहन पर्याप्त मात्रा में चाहिये। परन्तु हम मानते हैं कि ये सब चीजें हमारी वर्तमान की आवश्यकता होना चाहिये। अर्थात् वह 'नीड बेस्ड" यानि आवश्यकता पर आधारित होना चाहिए। यही बात प्रसिद्धि—(पब्लिसिटी) के बारे में है। प्रसिद्धि बारिश के समान होती है। बारिश का एक ऑपटिमम् प्वाइंट होता है। उससे अधिक बारिश हुई तो बाढ़ आती है और नुकसान होता है, और कम बारिश आई तो अकाल पड़ता है और नुकसान होता है। अतः प्रचार भी आवश्यकता पर आधारित होना चाहिए। कहीं पर प्रस्ताव छपते हैं तो कहीं पर हड़ताल हुयी है तो वह खबर समाचार-पत्र में आनी चाहिए। हर दिन हम अपना फोटो अखबार में देखें यह इच्छा ठीक नहीं है। इससे संगठन बिगड़ता है। सम्पत्ति भी उतनी ही चाहिए जितनी आवश्यक हो। साधन अधिक होने से आदतें बिगड़ती हैं। साधन अधिक होने से साधना की प्रवृत्ति समाप्त होती है।

व्यक्ति केन्द्रित नेतृत्व

आज देश में व्यक्ति-केन्द्रित नेतृत्व दिखाई देता है। हमारे यहाँ सामूहिक नेतृत्व है। परन्तु आज देश में नेतृत्व की कल्पना ही विचित्र है। एक नेता को बड़ा बनाओ, इसकी जय-जयकार करो। पर हमारे यहाँ व्यक्ति की जय-जयकार नहीं होती है। भारत माता की जय-जयकार होती है। पूरे हिन्दुस्तान में ऐसा कोई संगठन नहीं है कि जहाँ व्यक्ति की जयजयकार करने से मना किया गया हो। वहाँ पर व्यक्ति विशेष के कद को बढ़ाते हैं। लगता है समूचा संगठन एक व्यक्ति के करिश्मे पर ही टिका हुआ है। व्यक्ति विशेष की image बढ़ाने से संगठन खोखला होता है। लोगों को लगता है कि संगठन वगैरह का झंझट करने की अपेक्षा एक ही की जय जयकार करेंगे तो अपना काम भी हो जायेगा। अतएव वह संगठन के प्रति उदासीन हो जाते हैं। यह नेता भी संगठन खड़ा न होने पावे इसी का प्रयास करता है। उसको सीधे, समूह पर अपनी पकड़ समाप्त होने का डर लगा रहता है इसलिए वह जानबूझ कर प्रयास करता है कि संगठन कभी भी खड़ा न होने पावे, केवल मेरी जय जयकार होती रहे।

अनेक केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के विभाग में तो जब मान्यता मिल जाती है तो नेताओं का प्रयास रहता है कि संगठन अब न बढ़े। क्योंकि संगठन बढ़ने से नया खून लेना पड़ता है। नए कर्त्तव्यवान लोग सामने आते हैं। मैं

प्रमुख स्थान पर रहूँ या न रहूँ परन्तु संगठन बड़ा होना चाहिए इसलिए अपने से यदि कोई योग्य हों तो उनको आगे लाया जाता है। लेकिन आजकल उल्टा होता है। एक बार नेता बन जाने के बाद यही चिंता रहती है कि दूसरा कोई मेरी स्पर्धा में न आने पाये। और यदि कोई कृत्तत्ववान कार्यकर्त्ता होंगे भी तो उनको खदेड़कर पीछे कैसे कर दिया जाय। नये खून को ज्यादा कत्तत्ववान न बनने दिया जाय, उनसे काम करने का आह्वान न किया जाय। इन बातों से नेता की मूर्ति तो बढ़ती जाती है लेकिन संगठन खोखला हो जाता है। बाद में वह न नेता का रहता है और न संगठन का रहता है। दोनों ही समाप्त हो जाते हैं। व्यक्तिकेन्द्रित नेतृत्व एवं सामूहिक नेतृत्व की प्रक्रति में यह जबरदस्त अन्तर रहता है।

मालाओं का उदाहरण

व्यक्तिकेन्द्रित नेतृत्व एवं सामूहिक नेतृत्व में कैसा अन्तर रहता है? हमने तुलसी की माला अथवा रुद्राक्ष की माला देखी होगी उसमें एक मेरुमणि रहता है। मेरुमणि की मान्यता ऐसी है कि 108 रुद्राक्ष माला में रहने के बाद भी यदि मेरुमणि नहीं है तो माला अपूर्ण रहती है। माला को मान्यता ही तभी मिलती है जबकि उसमें मेरुमणि हो। माने माला को मान्यता के लिए उसमें मेरुमणि का रहना अपरिहार्य है। व्यक्तिकेन्द्रित नेतृत्व में व्यक्ति विशेष का भी यही हाल होता है। माने आप 108 की बजाय 216 अथवा 432 लोग जुटा लीजिये लेकिन जब तक यह नेता जी, मेरुमणि जी महाराज नहीं होंगे तब तक माला माने संगठन अपूर्ण ही रहेगा। नेतागिरी करने वालों का यही सोच रहता है। हम हैं तो संगठन का अस्तित्व है और यदि हम नहीं हैं तो आप जैसे हजारों लोग हों उसका कोई महत्व नहीं है।

लेकिन दूसरी प्रकार का जो सामूहिक नेतृत्व है उसकी भी अपनी एक प्रवृत्ति है। हम जब फूलों का हार बनाते हैं तब एक-एक फूल को धागे में सुई से पिरोते जाते हैं। सुई की वजह से धीरे-धीरे माला बड़ी हो जाती है। अच्छी लगने लगती है। और जब संगठन पूरा हो जाता है, पूरी माला, पूरा हार जब बनकर तैयार हो जाता है तब सुई के मन में यह विकार कभी भी नहीं आता है कि यह माला मेरी वजह से बनी है। तो इस माला में मेरुमणि के समान अपरिहार्य रूप से मैं भी बनी रहूँ। उल्टा ही होता है कि हार पूरा बन जाने के बाद सुई को, जिसकी बदौलत वह हार पूरा बनकर तैयार हुआ है, उसको हार में से निकाल देते हैं। हमने आज तक हार के साथ अपने गले में सुई को लटकाये हुए कभी भी किसी को नहीं देखा होगा। हाँ, सुई को आत्मतोष रहता है कि मैंने यह पूरा हार बनाया है। लेकिन हार में मेरुमणि के समान रहने की उसकी इच्छा नहीं रहती है। यह प्रवृत्ति सामूहिक नेतृत्व में आती है। लेकिन आजकल

इसको पागलपन कहा जाता है। उसकी वजह यह है कि जहाँ एकदम नेता बनने के उपाय, हथकण्डे, चालाकियाँ और तिकड़मबाजियाँ चलती हैं, वहाँ हमारे जैसे लोगों को पागल कहा जाता है।

हम पागल हैं, इसीलिए भारतीय मजदूर संघ है। हमने प्रारम्भ से ही यह चेतावनी दी है कि जो चतुर हैं उनको भारतीय मजदूर संघ में आना ही नहीं चाहिए। जो पागल हैं, जिनका जरा दिमाग का पेंच कुछ ढ़ीला है वही भारतीय मजदूर संघ में आयें। किन्तु हम राष्ट्र को आश्वासन देना चाहते हैं कि राष्ट्र के पुनर्निर्माण का, गरीबों की गरीबी दूर करने का, रोने वाले लोगों के आँसू पोंछने का, unto the last अर्थात् अन्त्योदय का, माने देश के छोटे से छोटे और गरीब से गरीब व्यक्ति के उत्कर्ष को सिद्ध करने का जो प्रमुख साधन है, भारतीय मजदूर संघ उसमें रहेगा। और इसलिए जो व्यवहार-चतुर लोग हैं, उनको हम कहेंगे कि साहब आप भारतीय मजदूर संघ के बाहर हट जाइए। आप प्रधानमंत्री बनिये। आप दुनिया के प्रैसीडैन्ट बनिये लेकिन हमने परम वैभव सिद्ध करना है। आप आयेंगे और जायेंगे। हम तो राष्ट्र के परम वैभव के लिए काम कर रहे हैं और वह हम करके रहेंगे। गरीबों की गरीबी दूर करेंगे। रोने वालों के आँसू पोंछेंगे। आखिरी आदमी के उत्कर्ष तक हम काम करते रहेंगे और इसके लिए ही यह हमारा पागलपन है। और इसलिए हम कहते हैं कि,—

बिगड़े हुए इन दिमागों में खुशियों के यह लच्छे हैं।
हमें पागल ही रहने दो, हम पागल ही अच्छे हैं॥

०—×—०

मोह-माया की रस्सियाँ काटें

युद्ध शस्त्र नहीं मन लड़ता है

अब युद्ध है तो युद्ध में शस्त्रों की आवश्यकता है, साधनों की आवश्यकता है। सब से प्रमुख शस्त्र कौन सा है यह प्रश्न है। अंग्रेजों के प्रमुख समय युद्ध में प्रमुख शस्त्र होता था बंदूक। पर अंग्रेजी में कहावत है कि—युद्ध में बंदूक नहीं लड़ती, उसको चलाने वाला हाथ लड़ता है; फिर कहा हाथ भी नहीं लड़ता तो उसके पीछे जो मनुष्य का मन है, वह वास्तव में लड़ता है। अर्थात् युद्ध में साधन कम रहें या अधिक परन्तु प्रमुख शस्त्र या महत्व की बात है युद्ध करने वाले मनुष्य का मन—उसके मन की तैयारी। और जब हम यहाँ से निश्चय करके जायेंगे कि लड़ाई के मोर्चे पर हमें काम करना है तो हमारा सबसे प्रमुख शस्त्र हमारा मन है, उसकी चिंता हमें अधिक करनी चाहिये। शेष शस्त्र (साधन) कम अथवा अधिक रहें तो कोई चिंता नहीं। वियतनाम पर जब अमेरिका ने हमला किया, अमेरिका के पास उस समय न शस्त्रों की कमी थी, न धन की। दस साल तक युद्ध चलता रहा, पर अमेरिका जीत नहीं पाया। वियतनाम गरीब देश था। शस्त्रास्त्र और धन की कमी थी पर उसके नागरिकों का मन युद्ध के लिए पक्का था। अमरीकी सोलजर यह एक अच्छा सैनिक नहीं है, उसके पास अति आधुनिकतम शस्त्रास्त्र थे, पैसा वगैरह सब कुछ था। लेकिन अमरीकी सेना की टुकड़ी को कहीं भेजना होता है तो पहिले यह देखना पड़ता था कि वहाँ अच्छी कैन्टीन की व्यवस्था है या नहीं, खेलने के लिए मैदान है या नहीं, पर्याप्त मच्छरदानियाँ हैं या नहीं। सभी सैनिक सुविधाएँ हों तभी अमरीकी सैनिक लड़ सकता है। माने सुबह का नाश्ता है तो देखना पड़ता था कि उसमें मक्खन, सॉस, जेली, जैम-किसी चीज की कमी तो नहीं है। ऐसे सुविधाभोगी सैनिक, अतः उनका मन इतना मजबूत नहीं होता था। बटन दबाते ही मशीनगन से गोलियाँ निकलती जाती है, तो कहा जाता है कि अमरीकी सैनिक युद्ध नहीं करता उसकी बंदूक युद्ध करती है। वियतनाम के पास शस्त्रास्त्र नहीं थे। पैसा भी नहीं था। यह गरीब लोग थे परन्तु वियतनामी सैनिक का मन प्रखरता से लड़ता था, दृढ़ता से लड़ता था। अपने कार्यकर्ता का मन भी इसी तरह दृढ़ होना चाहिए।

मन को सम्हालना होगा

खुद का मन ठीक रखना है यह तो हम सोचते ही हैं लेकिन सावधानी न रहने पर अपने ही मन को ठीक रखना बड़ा कठिन हो जाता है। हमारा मन

पक्का है, पर कई बार परिस्थितियाँ ऐसी आती है कि उनमें मन विचलित हो सकता है। कार्यकर्ता यहाँ से कुछ निश्चय करके घर पहुँचता है, वह सामान भी नहीं रख पाता है तब तक पत्नी कहती है कि जरा ये टेलीग्राम क्या है—देखिये। टेलीग्राम पढ़ा—सास की तबियत बहुत खराब है, गहन चिकित्सा कक्ष (इंटेंसिव केयर यूनिट) में रखा गया है, तुरन्त वहाँ जाना है। मन कहता है वहाँ जाना जरूरी है और सास की तबियत जब तक कुछ ठीक नहीं होती तब तक वहाँ रहना भी है। मानवता, सज्जनता, परिवार—सब दृष्टि से यह आवश्यक है ही। मजदूर संघ का काम जीवन भरका है, वह तो करते ही रहना है, इसमें कोई संशय थोड़े ही है। पर सास को देखने जाना यह आपद्धर्म है। वहाँ से वापस आए तो पत्नी कहती है—"ऐ जी! अगली पन्द्रह तारीख को लड़के का इन्टरव्यू है। अच्छे ढंग से पास हो गया तो तुरन्त नौकरी मिलेगी। लड़का यदि इन्टरव्यू में फेल हो गया तो फिर झंझट खड़ी होगी। तो उसकी थोड़ी तैयारी करवा दीजिये। 10–12 दिन रोज एक घंटा उसे पढ़ाने से काम हो जाएगा। भारतीय मजदूर संघ का काम तो जीवन भरका है वह भागा थोड़े ही जा रहा है उसके बाद कर लेना। तो जीवन भर इसी प्रकार से ये पारिवारिक और अन्य काम आते ही रहते हैं।

यह टकटक चलती ही रहेगी

इस सम्बन्ध में स्वामी रामतीर्थ ने एक कहानी बताई है। एक व्यक्ति घोड़े पर सवारी कसकर, सुबह ही वीरान प्रदेश में निकल पड़ा। गरमी के दिन थे, और प्रदेश वीरान था घोड़े को बड़ी तेजी से दौड़ा रहा है। स्वयं घुड़सवार और घोड़ा दोनों पसीने से तर, सूर्य भी अधिक प्रखरता से गर्मी बरसा रहा था। लेकिन आश्रय हेतु न कोई पेड़ न कोई छाया दिखाई दे रही थी। मध्यान्ह हो गई, दोनों थक गए थे। ऐसे में कहीं दूर हरियाली दिखाई दी। सोचा कि वहाँ पहुँच कर विश्राम करेंगे। पहुँचे तो सामने कुआँ था, रहट भी था, और टंकी भी थी। रहट चल रहा था, रहट से पानी टंकी में आ रहा था। घुड़सवार ने पहले खुद पानी पिया, हाथ मुंह धोया और बाद में घोड़े को पानी के पास ले आया। घोड़ा पानी को स्पर्श करता इतने में रहट की टकटक की आवाज आई। घोड़े ने उस ओर देखा तब तक क्षणार्ध के लिए टकटक बंद हो गई थी। घोड़ा फिर से पानी पीता तो पुनः टकटक, वह पुनः उसकी ओर देखने लगा कोई—यह क्रम थोड़ी देर चला। घोड़े की आदत थी कि आवाज सुनाई दे तो चौकन्ना होकर उस ओर देखता था ओर शेष काम बन्द कर देता था। घुड़सवार ने देखा कि घोड़ा पानी नहीं पी रहा है तो माली को बुलाकर उसे कहा कि अपने रहट की टकटक बंद करो, मेरा घोड़ा पानी पी नहीं पा रहा है। माली ने रहट बंद किया तो टकटक की आवाज बन्द हो गयी लेकिन पानी आना भी बन्द हो गया तो टंकी भी खाली होती जा रही थी। अतः घोड़ा टंकी में पानी न होने की वजह से फिर पानी नहीं पी सका।

घुड़सवार ने पुनः माली को कहा कि तुमने रहट बंद कर दिया अब मेरा घोड़ा टंकी से पानी कैसे पिऐगा ? माली ने कहा कि तुम्हारे घोड़े की आदत है टकटक की आवाज की ओर देखना और मेरे रहट की आदत है टकटक करना । मेरा रहट तो अपनी आदत नहीं बदल सकता अतः तुम्हारे घोड़े को ही अपनी आदत बदलनी होगी तभी वह पानी पी सकेगा । यह भगवान की लीला है । भगवान का रहट चल रहा है । भगवान के इस रहट की टकटक तो चलने वाली ही है । अतः सास अस्वस्थ है, लड़के का इन्टरव्यू है, लड़की के लिए वर खोजना है—ये सब चलने वाला ही है । यह टकटक बन्द होने वाली नहीं है । तो घोड़े को अपनी प्यास बुझाने के लिए इस टकटक के रहते पानी पीने की आदत डालनी होगी । हमको भी इस सब सांसारिक चख-चख के रहते हुए अपनी काम करने की आदत डालनी होगी । यदि हम इस तरह अपने दिमाग में सामंजस्य नहीं बिठा सकते तो कार्य करना ही मुश्किल हो जायेगा ।

पर मन वहीं पर रहे

भगवान रामकृष्ण इस मानसिक सामंजस्य के बारे में एक उदाहरण दिया करते थे । एक धनी व्यक्ति के घर बच्चा पैदा हुआ । उस बच्चे के लिये एक आया रखी गई । वह बच्चे की देखभाल बहुत ध्यानपूर्वक करती थी । वैसा न करती तो उसकी नौकरी छूट जाती । बाबा गाड़ी में बच्चे को घुमाना, नहलाना, कपड़े पहनाना, सब कुछ ठीक ढंग से करती थी । दोपहर बच्चे को कुछ खिलापिला के झूले में डालती, झुलाती और सुलाती । भगवान रामकृष्ण परमहंस कहते थे कि वह आया उस बच्चे को बड़ी ईमानदारी से झुला रही है, लेकिन उसका मन उसकी झोंपड़ी में गंदे कपड़ों पर सोए हुए उसके अपने बच्चे की ओर ही है—कि कहीं वह जाग तो नहीं गया, रो तो नहीं रहा । वह माँ-माँ कह कर पुकार रहा होगा । आगे भगवान रामकृष्ण कहते हैं कि उस आया की तरह हम भी संसार के सब काम ठीक ढंग से करते रहें लेकिन अपना मन भगवान के चरणों में—उनके ध्यान में स्थित रहना चाहिये ।

ध्यान केन्द्रित हो ताकि संतुलन बना रहे

अब हम तो इतने श्रेष्ठ नहीं हैं । हम तो अपने ध्येय का ही सदैव स्मरण करते रहें और उसी में भगवान के दर्शन करते रहें, यही पर्याप्त होगा । हम लोग सांसारिक कामों को छोड़ दें ऐसी बात नहीं हैं । जो पूर्णकालिक हैं, उनकी बात अलग है । सभी पूर्णकालिक बनें ऐसी इच्छा तो है, पर यह कठिन है, सरल नहीं है । अतः हमारे सांसारिक काम भी चलते रहें और हमारे मन में हमेशा भारतीय मजदूर संघ रहे यह आवश्यक है । यह संभव भी है । इस हेतु एकाग्रता चाहिये । गुजराती साहित्य में वर्णन आता है कि कई स्थानों पर बहुत दूर से पानी लाना पड़ता

था। ऐसे में मात्र एक घड़ा पानी ले आना, दुबारा जाना, तीन चार बार जाना, यह संभव नहीं है। अतः वहाँ के साहित्य में ऐसा वर्णन है कि गुजरात की महिलाएँ आठ-दस घड़े एक साथ लेकर जाती थीं और वह भी 8,10 और 12 के समूह में जाती थीं। घड़े भरकर और एक दूसरे की सहायता से उनको अपने सर पर एक पर एक रख, ऐसे आठ-दस घड़े रखती थीं और वापस आती थी। इस पानी लाने के क्रम में महिलाएँ घड़ों को हाथ से पकड़कर नहीं रखती थीं कि कहीं संतुलन बिगड़ न जाये बल्कि हाथ हिलाते आती थीं। हाथ दोनों खाली रहते थे लेकिन उनका ध्यान घड़ों पर केन्द्रित रहता था कि घड़े गिरे नहीं। इससे संतुलन बिगड़ता नहीं था। अपने कार्यकर्ता का मन भी इसी तरह का होना चाहिए। जिससे सांसारिक काम सभी चलते रहें लेकिन अपना ध्यान यूनियन, भारतीय मजदूर संघ और राष्ट्र कार्य की ओर हमेशा बना रहे।

एकांतिक निष्ठा चाहिये

यह बहुत आवश्यक भूमिका है। उपरोक्त मानसिक संतुलन न रहे और हम वैसी चिंता न करें तो सद्‌भावना से युक्त होते हुए भी हम राष्ट्रकार्य नहीं कर सकते। इस हेतु मन की सावधानी के साथ-साथ एक और सावधानी हमें बरतनी होगी। ध्येयवादी मनुष्य का मन भी सोचता है कि ध्येय के साथ-साथ थोड़ा अपना भी काम थोड़ा आगे बढ़ाया तो आपत्ति क्या है? वह सोचता है कि लक्ष्य पथ पर आगे बढ़ते हुए कुछ अपना नाम भी यदि रोशन हो सकता है, कुछ स्वार्थ सिद्ध हो सकता है, तो आपत्ति क्या है? यह आदमी ध्येय के लिये सब कुछ करेगा, पर चलते चलते अपना थोड़ा सा स्वार्थ भी वह पूर्ण कर लेगा। यह कार्यकर्त्ता प्रमाणिक है, ईमानदार है, ध्येयवादी भी है लेकिन वह सोचता है कि ध्येय के साथ-साथ कुछ अपना स्वार्थ भी सिद्ध हो जाये तो इसमें आपत्ति क्या है? तो मन को इतना ही सचेत और ऊँचा रखना है कि वह ध्येय के प्रति एकांतिक निष्ठा रख सके।

मुझे एक घटना याद आती है। पहले मेरे पास राजनैतिक काम था। माननीय भैया जी दाणीं संघ के सरकार्यवाह थे। उन दिनों हर एक चुनाव के समय अन्य नेताओं से आपसी बातचीत, समझौता वार्ता के द्वारा बातें तय करने का काम मुझे दिया गया था। एक ओर सोशलिस्ट पार्टी के प्रतिनिधि थे, दूसरी ओर मैं था और बीच में थे श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र। उस समय द्वारकाप्रसाद मिश्र जी से हमारा बहुत सम्पर्क आया। बातचीत से वापस आने पर मैंने एक बार श्री भैया जी दाणी से कहा कि भैयाजी! द्वारकाप्रसाद जी ठीक हैं, उनमें राज-नैतिक नेता के गुण हैं, इसलिए शायद वे हमारे लिए उपयोगी न हो, लेकिन मुझे लगता है कि वे शत प्रतिशत हिन्दू हैं। भैया जी दाणी ने मुस्कराते हुए कहा कि हाँ, तुम्हारी बात सही है। मैंने पूछा—फिर इस तरह हंस क्यों रहे हैं?

तो बोले कि तुम इतने दिनों से प्रचारक हो, मनुष्य के मनोविज्ञान का तुमको पता है, तुम्हारा अन्दाजा गलत तो नहीं हो सकता, वह ठीक है। द्वारकाप्रसाद जी सौ प्रतिशत हिन्दू हैं यह बात ठीक है, परन्तु वे इसके साथ-साथ 40 प्रतिशत, 50 प्रतिशत, 60 प्रतिशत, 70 प्रतिशत और भी कुछ हैं। मैंने पूछा ये और भी कुछ क्या है ? तो बोले—वे द्वारकाप्रसाद मिश्र हैं। माने मनुष्य ध्येयवादी है, पर वह सोच सकता है कि चलते-चलते कुछ थोड़ा अपना भी काम हो जाय तो इसमें आपत्ति क्या है ? इसका मतलब यह नहीं है कि वह गद्दार हो गया है, स्वार्थी हो गया है, धोखा देना चाहता है, ऐसा नहीं है। जैसे साइड विजिनिस करते हैं, उसी तरह ध्येय के लिए काम करते-करते कुछ अपने लिए भी करने की इच्छा हो सकती है।

सम्मोहात् स्मृति विभ्रमः

इस सम्बन्ध में ग्रीक पुराणों में एक बड़ी मजेदार कहानी है। एक राजा था। उसकी कन्या का नाम अॅटलांटा था। वह अत्यधिक सुन्दर थी। पूरे ग्रीस देश में उसके सौन्दर्य की ख्याति थी। इसके साथ-साथ उसकी और भी एक ख्याति थी कि दौड़ने में वह पी.टी. उषा के समान बहुत तेज थी और सदा दौड़ में विजयी रहती थी। राजा ने अॅटलांटा के विवाह के लिए एक शर्त रखी थी कि जो युवक दौड़ में मेरी पुत्री को मात देगा, उसी से उसका विवाह रचा जायेगा। शर्त तो रख दी, पर राजा ने सोचा कि मात्र इतनी शर्त रखने से चाहे जो ऐरा-गैरा दौड़ में भाग लेने आएगा और उनकी संख्या भी अधिक हो सकती है। अतः एक दूसरी भी शर्त राजा ने रखी कि जो दौड़ में अॅटलांटा से हार जायगा, उसे जीवन भर जेल में रहना पड़ेगा। इस बड़ी शर्त के कारण कुछ पाँच सात युवक ही दौड़ में भाग लेने आये। पर उन सभी को अॅटलांटा ने हराया। बाद में एक युवक और आया। लोगों ने इसे मना किया कि क्यों पागलपन करते हो, व्यर्थ में जेल की हवा खानी पड़ेगी। परन्तु युवक ने निश्चयी स्वर में कहा कि मैं अवश्य ही जीतने वाला हूँ।

युवक चतुर था। उसने अपनी कमर में एक पट्टा (बेल्ट) बाँध रखा था, जिसमें सुनहरे चमकदार सेब लगे हुए थे। उनकी चमक-दमक कुछ और ही थी। सारे ही सेब एक से एक रंग-बिरंगे और चमकदार थे और स्वाभाविक ही सब का मन उधर आकर्षित हो जाता था। दौड़ शुरू हुई। दौड़ते-दौड़ते राजकुमारी अॅटलांटा उस युवक के आगे निकल गई। युवक ने कमर पट्टे में से एक सुनहरा सेब निकाल कर आगे फैंका। वह लुढक कर राजकुमारी से कुछ आगे पहुँचा। राजकुमारी ने देखा तो उसका मन ललचाया। उसने सोचा कि वह सेब उठा लूं और फिर आगे बढ़ूं। उसने वैसा ही किया। पुनः वह दौड़ने लगी और युवक से आगे ही थी कि थोड़ी देर में युवक ने पहले से अधिक चमकीला सेब

फैंका। राजकुमारी ने देखा और मन ललचाया तो उसे भी उठा लिया। उस युवक ने एक से एक बढ़कर चमकीले सेब क्रमसे ही पट्टे में लगा रखे थे। पहला कुछ चमकदार दूसरा उससे ज्यादा चमकदार तीसरा उससे भी ज्यादा चमकदार। उसी क्रम से वह सेब निकालता गया और थोड़ी-थोड़ी देर में फैंकता गया। प्रत्येक बार दौड़ के मार्ग से कुछ हटकर और कुछ अधिक दूर सेब फेंका जाता और राजकुमारी उसे उठाती। वह सोचती कि सेब उठाऊँगी और कुछ अधिक तेज दौड़कर पुनः युवक से आगे ही चली जाऊँगी। यह क्रम चलता रहा। दौड़ की सीमा से अब कुछ ही दूरी पर दोनों थे। उस समय युवक ने आखरी सेब, जो सर्वाधिक चमकदार और लुभावना था, थोड़ा दूर फेंका। राजकुमारी उस ओर लपकी तो युवक ने अपनी गति तेज की और वह राजकुमारी से पहले सीमा रेखा पर पहुँच गया। युवक ने दौड़ जीत ली और राजकुमारी से विवाह किया। परन्तु अँटलांटा का मोह उसे ले डूबा। लक्ष्य था दौड़ में जीतने का पर उसके साथ-साथ थोड़ा सुनहरी सेब भी उठा लिया तो क्या आपत्ति है, इस भाव ने उसे हरा दिया। हमारा कार्यकर्त्ता भी अँटलांटा की तरह ध्येय के पथ में आए मोह की क्या गति होती है यह ध्यान में रखें और यह भी कि ध्येय-पथ पर लक्ष्य केन्द्रित होने पर कोई इधर-उधर की बात उसे मोहित न कर सके अच्छे-अच्छे सक्षम कार्यकर्त्ता भी सोचते हैं कि हम तो जीतने वाले हैं। हम ध्येय सिद्ध करके ही रहेंगे पर जाते-जाते थोड़ा अपना काम भी कर लिया तो कोई हर्ज नहीं है। इस मोह को टालना इस दृष्टि से हम अखण्ड सावधान रहें, यह आवश्यक है। हम अच्छे हैं, ध्येयवादी भी हैं फिर भी कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती हैं कि आदमी के बहादुर होते हुए भी उसके मन में कुछ समय के लिए ही क्यों न हो पर कभी कभी हिचक आ जाती है।

कभी ऐसा भी हो सकता है

जीवन में कभी-कभी बड़े विचित्र प्रसंग आते हैं। माधवराव पेशवा के जीवन की एक घटना है। वे अनुशासन प्रिय व्यक्ति थे एवं कड़ाई से अनुशासन का पालन भी करवाते थे। एक बार हाथी की लड़ाई आयोजित हुई। इस हेतु जो मैदान था वह सुरक्षित था और चारों ओर उसकी सुरक्षा का उचित प्रबन्ध भी था। चारों ओर लोग बैठ गये। माधवराव पेशवा का अंगरक्षक था खंडेराव दरेकर, जो बड़ा पराक्रमी था। हाथियों की लड़ाई शुरू हुई। एक हाथी अधिक मार खाने के कारण चिढ़ कर बिफर गया और प्रेक्षकों में घुस गया। जिधर माधवराव पेशवा बैठे थे, उसी ओर वह हाथी घुस गया और पेशवा के निकट पहुँचने लगा। उनका अंगरक्षक खंडेराव बड़ा बहादुर था पर संकट एकाएक आया था और सोचने के लिए फुरसत नहीं थी। ऐसे में असमंजस में पड़ कर प्रतिक्रिया में (Reflex action) घबराकर वह वहाँ से भाग गया। सौभाग्य से

माधवराव पेशवा को कुछ नहीं हुआ। लोगों ने पेशवा से कहा कि आपका अंग-रक्षक यहाँ से भाग गया। उसे सेवा-मुक्त कर देना चाहिए। परन्तु पेशवा ने कहा ऐसा नहीं है। कभी-कभी अच्छे से अच्छा बहादुर आदमी भी असमंजस और भय के कारण मैदान छोड़कर भाग जाता है। इसमें इसको कायर नहीं मानना चाहिए एकाध बार अचानक संकट आने पर ऐसा हो सकता है।

वैसी ही दूसरी घटना

ईसा मसीह के भक्तों की भी एक कहानी इसी प्रकार की है। ईसा की मृत्यु के पश्चात् दो लोगों ने सोचा कि उनके उपदेश का प्रचार करना चाहिए। उनमें एक था पीटर, दूसरा बर्नाबॉस। उन दिनों ईसाइयत का प्रचार करना बड़ा कठिन काम था, रोमन साम्राज्य भी इसके खिलाफ था। इसके कारण जनता भी खिलाफ थी। अतः यह काम जोखिम का था। किसी भी गाँव में जाकर ईसा के उपदेशों का प्रचार करना बहुत खतरनाक था। लोग बोलने नहीं देते थे, मीटिंग नहीं होने देते थे। यदि मीटिंग हुई तो उसमें कई प्रश्न करते और मारपीट भी करते थे। इस पर भी इन दोनों ने अपना प्रचार कार्य जारी रखा। एक गाँव में भाषण हुआ। मार्क नाम का एक बीस-इक्कीस साल का जवान इनके भाषण से बहुत प्रभावित हुआ और इन दोनों के पास आकर बोला कि मैं आपके भाषण से बहुत प्रभावित हुआ हूँ, आपके सिद्धांतों से सहमत हूँ, अतः कृपया मुझे भी आप प्रचार कार्य में अपने साथ रख लें। उन दोनों ने मार्क को समझाया कि तुम जरा पूरा विचार कर लो, क्योंकि यह धर्म प्रचार करना बड़ा जोखिम का काम है। परन्तु मार्क दृढ़ रहा और उन दोनों के साथ प्रचार कार्य में जुट गया। एक दिन वे तीनों ऐसे गाँव में गए कि जहाँ सब विरोधी थे एवं पीटर तथा बर्नाबॉस को खतम करने का षड्यन्त्र रच चुके थे। संयोग से पहले मार्क का भाषण हुआ। चारों ओर से उस पर पत्थरों की बौछार होने लगी। गालियाँ—चिल्लाहट, नारे और पत्थर—इन सबसे वह कुछ असमंजस में पड़ा, वैसे तो मार्क बहुत ध्येयनिष्ठ था लेकिन उस समय यह एकदम कुछ घबराया और भाषण छोड़कर बीच में से ही भाग गया और सीधे अपने गाँव गया। मार्क था तो बहादुर, साहसी। ईमानदार और दृढ़निश्चयी भी था। यह सब होते हुए भी Reflex action प्रतिक्रिया की वजह से वह भाग गया। कभी-कभी ऐसा मौका भी जीवन में आता है। घर लौटने पर मार्क को लगा कि गलती हुई है। वह फिर पीटर और बर्नाबॉस के पास वापस गया। पीटर ने उसे कोसना शुरू किया और कहा कि तुम बड़े विश्वासघाती हो, हम तुम्हें अब अपने साथ नहीं रहने देंगे। बर्नाबॉस ने पीटर को कहा कि ऐसा मत बोलो। बड़े बड़ों के जीवन में भी कभी एकाध बार ऐसा फिसलने का प्रसंग आता है। कोई बात नहीं। "गिव्ह हिम ए सेकण्ड चान्स"। उसे और एक मौका दो। ईसाई साहित्य में

सेकण्ड चान्स यह शब्द बहुत ही प्रसिद्ध है। पीटर कहता है—नहीं, सेकण्ड चान्स नहीं दिया जायेगा। ऐसे कायरों को अपने साथ रखने में बड़ा नुकसान होगा। बर्नाबॉस ने पुनः उसे एक और मौका देने की बात दोहराई। मार्क को चान्स मिला और इतिहास साक्षी है कि मार्क ने बाद में 'न भूतो न भविष्यति' ऐसा त्याग किया, परिश्रम किया, बलिदान किया कि जिसके कारण ईसाइयत के ग्रन्थों में जो बारह प्रमुख अध्याय हैं उनमें एक अध्याय को मार्क का नाम दिया गया है। बाकी बाइबिल में भी उसका उल्लेख है।

ओह—मोझेस भी······—

मोझेस के जीवन की भी ऐसी ही एक घटना है। वह बड़ा ही धार्मिक और निष्ठावान व्यक्ति था। अपने लोगों को साथ लेकर वह "प्रॉमिस लैंड" याने निवास हेतु कोई अच्छा स्थान खोजने में निकल पड़ा। उस समय मिश्र (ईजिप्त) के जो राजा थे वे मोझेस को खतम करने की ताक में थे। अतः मोझेस उस इलाके से कुछ हटकर दूर के रास्ते से गया। वह बड़ा साहसी था उसने सोचा था कि भगवान ने मुझे प्रेषित के नाते भेजा है अतः संकट शायद न आए। लेकिन रास्ते में लाल समुद्र (रेड सी) बाधा बन कर आ गया। आगे कैसे बढ़े यह विवंचना उत्पन्न हो गई। समुद्र में से जाएंगे तो सब मर जाएंगे और रास्ते से जाएंगे तो दुश्मन की सेना का सामना करना पड़ेगा। परन्तु सामने समुद्र, और सुयोग पाकर पीछे से शत्रु की सेना ने हमला भी कर दिया। "आगे पहाड़—पीछे खाई" वाली बात हो गई। इतना धैर्यवान आदमी पर विचित्र संकट की वजह से डगमगाया और धीरज खो बैठा। ईश्वर की कृपा थी इस लिए बाद में वह संकट दूर हो गया रास्ता मिल गया यह एक अलग बात है लेकिन इतने श्रेष्ठ पुरुष का धीरज भी एक क्षण के लिए समाप्त हो गया था। तात्पर्य यह है कि ऐसे प्रसंगों पर बहुत अधिक आत्म-ग्लानी की आवश्यकता नहीं। और दूसरों को भी यह सोचने की आवश्यकता नहीं कि वह कायर है, भाग गया है, धोखेबाज है—आदि-आदि। आवश्यकता इस बात की है कि उस व्यक्ति को सेकण्ड चान्स—दूसरा मौका—देने की एवं उस व्यक्ति द्वारा पुनः प्रयास करने की। बार-बार अवसर नहीं देना है नहीं तो अनुशासन ही नहीं रहेगा। प्रसिद्ध लेखक रॉबर्ट लुईस स्टीव्हनसन ने कहा है कि "व्यक्ति खुद को प्रयत्न पूर्वक सद्‌गुणी बनाऐं और सब दृष्टि से सावधानी बरतें। दूसरों को सुखी बनाना और स्वयं को सद्‌गुणी बनाना यह प्रयास करना चाहिए। लेकिन होता उल्टा है हर एक आदमी दूसरों को सद्‌गुणी बनाने का प्रयास करता है और स्वयं को सुखी बनाने में लगा रहता है। यह मनुष्य स्वभाव है। लेकिन अपने अन्दर कोई आत्मग्लानि कभी न आऐ और यदि आ जाये तो उसे दूर करके साहस के साथ फिर से काम में जुट जावें इस दृष्टि से भी सावधानी रखने की

आवश्यकता है। यह सब करने के लिए मन इतना पक्का हो कि हर हालत में व्यक्ति डटा रहे। पर वीर पुरुषों के लिए भी यह बहुत कठिन होता है।

अपशकुन शकुन बन गया

वर्तमान सदी के पूर्व इंग्लैण्ड बहुत पिछड़ा हुआ देश था। उन्हें कपड़ा पहनने का भी ज्ञान नहीं था। जंगल के वृक्षों के पत्ते लपेटकर वे घूमते रहते थे। वे जैसे वन्य जाति के थे, उतने ही खूंखार भी थे। मनुष्य को मारकर भून कर खाते थे। ब्रिटिश चेंनेल के उस पार नीदरलैण्डस नामक देश में राजा विलियम का शासन था। उसने हॉलैण्ड एवं कुछ अन्य देशों पर भी अपना शासन जमाया था। बाद में उसे इंग्लैड को जीतने की भी इच्छा हुई। उसने अपनी सेना के सामने यह सुझाव रखा। कोई कुछ बोला तो नहीं लेकिन सब जानते थे कि वहाँ के लोग नरबलि देते हैं, मनुष्य को मार कर खाते हैं, बड़े खूंखार हैं। अतः उनसे लड़ना कोई आसान बात नहीं है। सभी इस तरह सोचते थे, सैनिकों के मन में थोड़ी हिचक थी लेकिन राजा का विरोध कौन करेगा? राजा भी जानता था कि सेना के मन में हिचक है। फिर भी उसने सोच समझकर योजना बनाई। उन दिनों लकड़ी के जहाज हुआ करते थे। उन जहाजों से सारी सेना को लेकर राजा इंग्लैण्ड के किनारे पहुँचा। राजा का आदेश था कि जब सारे जहाज पहुँच जाएंगे तब कोई भी पानी में कूदेगा नहीं। इंग्लैड की जमीन पर पहले राजा स्वयं कूदेगा। आदेश के अनुसार सबने देखा कि सबसे पहले राजा कूद पड़ा। वहाँ जमीन खिसकती रहती थी और कीचड़ भी थी, अतः बहुत फिसलन थी। जैसे ही राजा कूदे तो वह फिसल गया लेकिन दाहिने हाथ के सहारे उसने अपने आप को सम्हाला। अब जहाँ पहले से ही सेना के लोग हिचक रहे थे वहाँ राजा को फिसलते देख उनके मन में शंका पैदा हो गई कि कहीं यह अपशकुन तो नहीं है। राजा सैनिकों के मनोविज्ञान को जानता था। वह खुद भी अच्छा सेनानी एवं पराक्रमी था। सैनिकों के मन में कोई विपरीत भाव पैदा न हो, वह हतोत्साहित न हों इसलिए राजा फिसलते ही जोर से हँस दिया और कहा कि यह तो बहुत बड़ा शुभशकुन हुआ है। जैसे ही मैंने इंग्लैण्ड की धरती पर पैर रखा, मेरे दाहिने हाथ में पहनी राजमुद्रा इंग्लैण्ड की भूमि पर अंकित हो गई है। अतः कितनी शुभ और सुखद सूचना है यह! और फिर सैनिकों से कहा कि अब हमें आगे बढ़ना है और वह जो सामने पहाड़ है, उस पर पहुँचना है। साथ ही यह भी कहा कि आगे बढ़ते समय कोई भी बाएं-दाएं—इधर-उधर अथवा पीछे की ओर न देखें। आदेश हुआ और सेना ने कूच किया। राजा ने अपने खास 30–40 लोगों को पीछे रख दिया था। उनसे राजा ने कहा कि जब सैनिक आगे कूच करेंगे तब ये जितने भी जहाज हैं, सब में आग लगा देना, ताकि किसी के मन में भागने का विचार आए भी तो वे भाग न सकें। इधर सैनिक आगे देखते हुए बढ़ते रहे और पीछे सारे

जहाज जला दिए गए। पहाड़ी की चोटी पर पहुँचते ही सैनिकों को रुकने का आदेश हुआ और साथ ही पीछे मुड़ने का। सारे सैनिक पीछे मुड़े तो उन्हें यह देखकर हैरानी हुई कि उनके सारे जहाज जल रहे हैं। राजा ने उन्हें पुनः पीछे मुड़ने का आदेश दिया और उनके सामने एक संक्षिप्त सा भाषण दिया। कहा—"देखो ! वे जहाज जल रहे हैं। यूं तो वे जलाए गये हैं। यदि हम'जान बचाकर भागने की सोचें तो अब कोई रास्ता नहीं है। समुद्र में से तैर कर हम में से कोई भी मातृभूमि वापिस जा नहीं सकता है क्योंकि वह जोखिम का काम है। अतएव हमारे सामने दो ही विकल्प हैं—या तो समुद्र में कूद कर मर जायें या फिर शत्रु के साथ युद्ध करते हुए मर जायें। जीत होगी या हार होगी यह बाद में देखा जायेगा। राजा के इस उद्‌बोधन से सैनिकों में हिम्मत बंध गई थोड़ी बहुत जो हिचक थी वह भी समाप्त हो गई और फिर सबने पूरे पराक्रम के साथ युद्ध किया तथा इतना खूंखार देश होते हुए भी इंग्लैण्ड पर विजय प्राप्त की।

सूर्या जी ने रस्सियाँ काटी

अपने इतिहास में भी ऐसी एक घटना आती है। माता जीजाबाई ने आदेश दिया कि कोंडाणा किला जीत कर अपने कब्जे में लेना है। शिवाजी ने यह काम अपने विश्वस्त एवं पराक्रमी सैनिक तानाजी मालसुरे को दिया। उन दिनों खेती के काम चल रहे थे। वैसे भी शिवाजी के पास कोई अधिक सैनिक नहीं थे। तो भी खेती का काम छोड़कर सारे लोग आदेश का पालन करने पहुँच गये। कोंडाणा किला बहुत बड़ा था। युद्ध की दृष्टि से कोंडाणा का बहुत महत्व था, क्योंकि उस किले पर से चारों ओर का बहुत बड़ा भूभाग नियंत्रण में रखा जा सकता था। किले पर औरंगजेब का एक सेनापति उदयभानु था, वह भी बहुत पराक्रमी था। उसके पास मुगलों की बहुत बड़ी सेना भी थी। वैसे तो किले पर चढ़कर जाना ही मुश्किल था। और गए तो शिवाजी की छोटी सी सेना का मुकाबला मुगलों की विशाल सेना से था। अतः शिवाजी ने सोचा कि अमावस्या की रात में गुरिल्ला युद्ध लड़ा जाय। तानाजी ने किले का निरीक्षण किया। एक ओर की दीवार का कुछ हिस्सा कुछ सीधा था लेकिन कठिन था, जहाँ से किले पर चढ़ना आसान नहीं था। इस कारण वहाँ सुरक्षा का प्रबन्ध भी साधारण था। तानाजी ने ऊपर चढ़ने हेतु वही स्थान चुना। उनके पास एक गोह भी थी, उसकी पूंछ में रस्सा बाँध कर उसे ऊपर फेंका और उसी रस्सी के सहारे तानाजी के सैनिक ऊपर चढ़े। उन्होंने सेना के दो हिस्से किए। एक हिस्सा तानाजी के नेतृत्व में रहा और दूसरा हिस्सा उनके भाई सूर्या जी मालसुरे के नेतृत्व में दिया और उन्हें मुख्य द्वार की ओर जाकर छिपने को कहा गया। तानाजी स्वयं गोह से बंधी रस्सी के सहारे ऊपर चढ़ते गये। ऊपर जाने का कार्यक्रम अमावस्या की रात को था। शत्रु सेना, खास कर वह मुगलों की सेना जो रात में शराब के नशे में धुत रहती है, जिसकी वजह से वह बेखबर और बेसुध अवस्था में रहते हैं यह कल्पना तानाजी को थी।

उनसे थोड़ी लड़ाई या मारपीट करते हुए तानाजी के लोग मुख्य द्वार तक आते, उसे खोल देते और उस मार्ग से वहाँ सूर्या जी एवं उनके साथ के सैनिक किले के परिसर में आते और फिर शत्रु सेना से मुठभेड़ होती—यह योजना थी। इस योजनानुसार ही सारा काम हुआ। गोह के सहारे तानाजी के साथ के लोग ऊपर चढ़ गए। अंधेरे में ही उन्होंने मुख्य द्वार खोला और सूर्याजी के साथ के लोग अन्दर आ गए। मुगल सैना बेखबर थी, उसी अवस्था में मारकाट शुरू हुई। अंधेरी रात में इसका पता भी नहीं चल पा रहा था कि कौन किसे मार रहा है। अपना-पराया पहचानना भी मुश्किल था। फिर भी दोनों ओर के लोग कुछ मात्रा में सजग हुए। इसी समय तानाजी का मुकाबला उदयभानु से हुआ। इस लड़ाई में तानाजी मारे गये। साधारणतः परम्परा यह थी कि लड़ाई में नेता या सेनापति मारा जाय तो सेना धैर्य खोकर भाग जाती थी। तानाजी के मरने की खबर भी वायु वेग से सब जगह पहुँची। सूर्याजी ने जैसे ही खबर सुनी, सारा काम छोड़कर, जिन रस्सियों से सैनिक ऊपर चढ़कर आए थे, वे रस्सियाँ काट दीं। जैसे हुआ करता था, वैसे ही कई सैनिक जबभागने के इरादे से वहाँ पहुँचे तो सूर्या जी ने कहा कि जाओगे कैसे? मैंने तो वे सारी रस्सियाँ काट डाली है। अब विकल्प मात्र यही है कि या तो किले पर से कूद कर जान दे दो या शत्रु से लड़ते-लड़ते मरो अथवा किला जीत लो। सबके मन में विचार आया कि दोनों में से लड़ते-लड़ते मर जाना ही अच्छा है। या तो किला जीत लेंगे या लड़ते-लड़ते मारे जायेंगे इसमें फिर कोई आपत्ति नहीं है। सैनिकों के मन की वह क्षणिक कायरता समाप्त हुई और बड़े पराक्रम से सब लोगों ने युद्ध किया, शत्रु को परास्त किया तथा किला फतह कर लिया। वैसे वह कायर नहीं थे, बहादुर थे पर एकाध क्षण की कमजोरी Reflex action की वजह से जो आ गई थी वह दूर हुयी और किला फतेह किया गया। किला जीतने की खबर पाकर शिवाजी वहाँ आए। उन्हें ताना जी के मरने का बड़ा दुख हुआ, पर दूसरी ओर सामरिक दृष्टि से महत्व का किला कोंडाणा जीता गया, इसका आनन्द भी हुआ। उन्होंने भावावेश में कहा कि "गढ़ आला पण सिंह गेला" याने किला जीता गया पर सिंह मारा गया। इसलिए बाद में किले का नाम सिंहगढ़ रखा। तात्पर्य यही है कि कभी-कभी क्षणिक कायरता, किंकर्तव्यविमूढता आती है। पर वह क्षणिक ही होती है। यह मनुष्योचित कमजोरी है। यह कार्यकर्ता गम्भीर भी है और ईमानदार भी है लेकिन हर क्षण का एक अलग मनोविज्ञान होता है जिससे बचने के लिए विलियम ने सभी जहाजों को आग लगा दी और सूर्या जी मालसुरे ने जिन रस्सियों के सहारे भागा जा सकता था उनको ही काट दिया।

अतः हम कार्यकर्ता भी ध्यान रखें

उक्त प्रकार के क्षण अच्छे-अच्छे ध्येयनिष्ठ कार्यकर्ता के जीवन में भी आ सकते

हैं । इसका अर्थ यह नहीं है कि कार्यकर्ता अप्रामाणिक है या ध्येयनिष्ठ नहीं है। वह है। फिर भी अन्त में और एक बात की ओर संकेत करना आवश्यक है। अन्य लोग एवं भारतीय मजदूर संघ के कार्यकर्ता—दोनों में एक अन्तर है। राजा विलियम उसके सैनिक भाग न पाएं इस हेतु जहाजों को आग लगा दी और सूर्या जी मालुसरे ने सैनिक भाग न जायं इसलिए गोह से बंधी रस्सियाँ काट दीं । किन्तु हम न तो जहाज जलाने के पक्ष में हैं और न ही रस्सियों को काटने के । क्योंकि इसमें सैनिकों के मन की कमजोरी दूर करने हेतु जहाज जलाने वाले या रस्सी काटने वाले दूसरे लोग थे । अतएव भारतीय मजदूर संघ की अपेक्षा है कि अपने कार्यकर्ता स्वयं ही अपनी रस्सियाँ काटें या स्वयं ही अपने जहाज जलाएं । हमारा एक-एक कार्यकर्ता इतना समझदार, ध्येयनिष्ठ, पराक्रमी, कर्मठ और विवेकशील है कि वह अपनी रस्सियाँ स्वयं ही काटेगा । संकल्प लेना या प्रतिज्ञा करना यही अपनी-अपनी रस्सियों को काटने का नाम है । हम सब जब इस वर्ग से वापस जाएंगे तो यही प्रतिज्ञा लेकर हम जायें, हम यह निश्चय करें कि आर्थिक स्वातंत्र्य का यह द्वितीय महायुद्ध जब तक समाप्त नहीं होता, तब तक हम एक क्षण के लिए भी इस युद्ध के मैदान को छोड़कर कहीं जाएंगे नहीं । यही अपनी-अपनी रस्सियाँ काटने का काम है । यह प्रतिज्ञा कर, दृढ़ निश्चय के साथ हम अपने-अपने स्थान पर लौटे तो यह हमारा पारिवारिक एकत्रीकरण, यह नागपुर का अभ्यास वर्ग सफल हुआ, ऐसा विश्वास सभी के मन में स्वयं ही जगेगा, इसमें कोई संदेह नहीं ।

०—×—०

प्रश्नकाल के सत्र में विभिन्न विषयों पर चर्चा

रिसपान्सिव को-आपरेशन

हम लोग "नानपालिटिकल" हैं अर्थात् ईमानदारी से नानपालिटिकल हैं और इस दृष्टि से हमने यह कहा है कि किस किस पार्टी की सरकारें हैं, इसका विचार हमारे सामने नहीं रहेगा। सरकार मजदूरों के साथ क्या रूख अपनाती है, यही सवाल होगा। पार्टी कोई भी रहे। इसलिए "रिसपान्सिव को-आपरेशन" और उसका विवरण भी दिया गया कि, जितनी मात्रा में सरकार मजदूरों के साथ सहयोग करेगी, उतनी मात्रा में मजदूर सरकार के साथ सहयोग करेगा। जितनी मात्रा में सरकार मजदूरों के साथ असहयोग करेगी, उतनी मात्रा में मजदूर सरकार के साथ असहयोग करेगा। जितनी मात्रा में सरकार मजदूरों का विरोध करेगी, उतनी ही मात्रा में मजदूर भी सरकार का विरोध करेगा। यही एक ही प्रकार की समान नीति सभी पार्टियों की सरकार के लिए लागू है। यह बात ठीक है कि भारतीय जनता पार्टी में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक होने के कारण और भारतीय मजदूर संघ में भी प्रमुख कार्यकर्ता राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के होने के कारण आपसी दोस्ती हो सकती है और उसके कारण जहाँ व्यक्तिगत रूप से व्यक्तिगत काम है, व्यक्तिगत रूप से एक दूसरे की सहायता कर सकते हैं किन्तु जहाँ मजदूरों का सवाल है, वहाँ जो अपनी रिसपान्सिव को-आपरेशन की नीति है वही लेकर चलना है। कम्युनिस्ट और इन्टक की जो पद्धति है कि अपने दोस्तों की सरकार है तो झटके से मजदूरों का गला घोटना ऐसी बात भारतीय मजदूर संघ सहन नहीं कर सकता।

विविधता में एकता के दर्शन

दो साल पहले वर्ल्ड फैडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन कांफ्रेंस में अपने प्रतिनिधियों को बुलाया गया था। तो उस समय के अपने अध्यक्ष श्री रामभाऊ जोशी और जनरल सैक्रेटरी श्री प्रभाकर घाटे दोनों गये थे। वहाँ भी यह सवाल उपस्थित हुआ था। यह जो पुराना मार्कसिजम लेनिनिजम है, उनकी जो व्यवस्था है, वही ठीक है, ऐसा विचार सीटू के प्रतिनिधियों ने जैसा रखा वैसा ही विचार रखने वाले वहाँ बहुत कम लोग थे। कम्युनिस्ट यूनियन के भी जो विभिन्न देशों से लोग गये थे उन्होंने भी कहा कि भाई कोई तीसरा विकल्प खोजना चाहिए। जिन्होंने कम्युनिजम के बारे में अपनी निराशा प्रदर्शित की वे सब कैपिटलिजम की गोद में जाकर बैठ गये हैं, ऐसी बात नहीं है। फ्री मार्केट एकोनॉमी के भी दुष्परिणाम

लोग जानते हैं, किन्तु कोई और रास्ता न होने के कारण लोग इसे अपना रहे हैं। उनके मन में क्या और कोई विकल्प हो सकता है ? यह विचार है। उस परिस्थिति में थर्ड आॅल्टरनेटिव शब्द की बड़ी चर्चा उस वर्ल्ड फैडरेशन आॅफ ट्रेड यूनियन कान्फ्रेंस में हुई। अपने प्रभाकर घाटे ने यह सुझाव दिया कि यदि कोई थर्ड आल्टरनेटिव हो सकता है तो उसके ऊपर विचार करने के लिए एक कमैटी बनाई जाय। किन्तु राजनीतिक कारणों से एक कमैटी बनाना उनके लिए आसान काम नहीं था। जैसे कम्युनिस्ट कहते थे कि सारी दुनिया में जितने प्रश्न हैं, उन सब प्रश्नों का उत्तर उनकी जेब में है। जबकि उनकी जेब में सिगरेट छोड़कर और कुछ भी नहीं रहता। हम लोग भी यही कहते रहे हैं कि सभी बातों का अध्ययन करते हुए विकल्प तैयार करना पड़ेगा। हाँ यह बात ठीक है कि आज एकदम ब्लयू प्रिंट देने की स्थिति नहीं है, किन्तु हम यह जानते हैं कि अपनी यह जो भारतीय संस्कृति है, उस संस्कृति के आधार पर नयी रचना हो सकती है। इसलिए जो विकल्प आएगा अपने देश से ही आएगा। अवनाल्टट्रेवन जो प्रसिद्ध इतिहास शास्त्रज्ञ हैं, उन्होंने 28 सिविलायजेशन और सबसिविलायजेशन का अध्ययन करने के पश्चात् एक निष्कर्ष निकाला है। वह निष्कर्ष यह है कि आगे चलकर दुनिया का मार्गदर्शन करने की जिम्मेदारी भारत पर ही आने वाली है। मैंने भी जब इस आशय की बात को पढ़ा तो मुझे भी बड़ा आश्चर्य हुआ। वास्तव में हम तो अपनी ही समस्याओं से ग्रस्त हैं, और बताया जा रहा है कि दुनिया का मार्गदर्शन अपने को ही करना है तो हमें लगा कि जैसे धोती पहनकर रास्ते में 10–12 लोग जा रहे हैं और हमारी धोती छूट रही है, और हमारे ख्याल में यह बात नहीं आ रही है कि धोती कैसे संभाली जाय किन्तु अबनाल्टट्रेवन हमको बता रहे हैं कि सबकी धोती संभाल्ने का काम आपको करना है। ऐसा ही कुछ बोल रहे हैं। जो हमें "फैनटास्टिक" लगा। किन्तु बाद में उन्होंने स्पष्टीकरण दिया कि भारत समस्याग्रस्त है यह बात मैं जानता हूँ। दुनिया में जितनी तरह की समस्यायें हैं वह सब भारत में हैं। दुनिया में जहाँ कोई समस्या होगी वह भारत में भी होगी। जहाँ यह बात सही है कि दुनिया की कोई भी समस्या भारत में अवश्य होगी। वहीं दूसरी बात भी है। वह यह कि भारत में अपनी संस्कृति है, जो परम्परा से भारत को विरासत में मिली है। भारत में संस्कृति नाम की जो चीज है वह दुनिया के किसी देश के पास नहीं है। उस संस्कृति का नाम है "विविधता में एकता का दर्शन" करना। यह जो विरासत है, यह दुनिया के किसी भी देश के पास नहीं है। इसी के आधार पर अवनाल्टट्रेवन भी कहते हैं कि जितनी समस्याएं भारत के सामने हैं, उन सब समस्याओं पर भारत मात करने वाला है और भारत जब इसी संस्कृति के आधार पर अपनी समाज की रचना करेगा तो फिर इन सभी समस्याओं का उत्तर देते हुए पूरी तरह मार्ग निकालेगा, नई समाज रचना करेगा। इसकी एक मिसाल इसका एक मॉडल तैयार होगा, और दुनिया में जहाँ-जहाँ

समस्याएँ हैं उन लोगों को भारत में आकर अपनी समस्याओं के समाधान का तरीका सीखना होगा। जब दुनिया के सब लोग अपनी समस्या का समाधान ढूंढने भारत आएंगे तो उसका दायित्व भारतवासियों पर आयेगा। शायद इसीलिए अबनाल्टट्रेवन ने कहा कि भारत दुनिया का मार्गदर्शक होगा।

ट्रेड यूनियन के तीन रूप

ट्रेड यूनियन के बारे में यदि विचार किया जाय तो उसमें अधिक लोगों को अधिक दिनों तक प्रेरणा देने की ताकत नहीं है। कम्युनिस्ट जिसे ट्रेड यूनियनिजम कहते हैं—वह ट्रेड यूनियननिजम नहीं है, बल्कि वह तो ब्रेडबटर एकोनामिजम है। केवल आर्थिक स्वार्थ के लिए लोगों को इकट्ठा करना, आर्थिक लड़ाई करना, और लड़ाई खत्म होने के बाद कहना कि यह एकोनामिजम है, जिसमें न कोई सिद्धान्त है और न ही ध्येय। हमारा कहना है कि यह पॉलिटिकल ट्रेड यूनियनिजम है। लेनिन ने भी कहा था कि ट्रेड यूनियन मूवमेन्ट को कम्युनिस्ट रिवोल्यूशन के माध्यम के रूप में उपयोग करना चाहते हैं।

भारतीय मजदूर संघ जिस "जेन्यूइन ट्रेड यूनियन" की बात करता है—वह दूसरी बात है। वह "दि वर्कर्स इन्टरेस्ट विदिन दि फ्रेम ऑफ नेशनल इन्टरेस्ट" मानता है। हम राष्ट्रवादी हैं। राष्ट्र खड़ा होगा तो मजदूर गिर नहीं सकता। राष्ट्र और मजदूर दो अलग-अलग बातें नहीं हैं। मजदूर राष्ट्र-शरीर का अविभाज्य अंग हैं। राष्ट्र के साथ हम अभिन्नता से जुड़े हैं। अद्वैत हैं, द्वैत नहीं। राष्ट्र के पुर्ननिर्माण का एक साधन इस रूप में भारतीय मजदूर संघ है ऐसा हमने कहा है। अर्थात् ट्रेड यूनियन में तीन पंथ हो गये। पहला एकोनामिजम, दूसरा पालिटिकल यूनियनिजम, तीसरा जेन्यूइन ट्रेड यूनियनिजम—भारतीय मजदूर संघ तीसरी प्रकार की ट्रेड यूनियनिजम का पक्षधर है। शेष दो प्रकार की चलने वाली ट्रेड यूनियन का असर हमारे ऊपर तब तक होने की सम्भावना नहीं है जब तक हमारे सम्मुख राष्ट्रभक्ति का ध्येय है।

नक्सलवाद का मूलाधार असन्तोष

नक्सलवाद के आद्य प्रणेता चारु मजूमदार थे। चूंकि यह नक्सलबाड़ी गांव से प्रारम्भ हुआ इसलिए इसका नाम नक्सलवाद पड़ा। नक्सलवाद ने तरह-तरह के रूप धारण किए हैं। पहले एक छात्र चारु मजूमदार का था बाद में गुरु चेले में मतभेद निर्माण हुआ। नक्सलवादियों में जो ग्रुप निर्माण हुए वह उस प्रकार के नहीं थे जैसे कि राजनीतिक दलों में निर्माण होते हैं। चारु मजूमदार को लगा कि चायना मॉडल अपनाना ठीक होगा किन्तु उस समय रूस मॉडल की भी जोरों से चर्चा थी। चारु मजूमदार की सोच थी कि माओ ने जैसा किया है उसी प्रकार उन्हें भी

करना चाहिए। इसलिए उन्होंने कुछ काम शुरू भी किया। बाद में चायना ने उनको कहा कि तुम गलत कर रहे हो। कुछ बातों पर मतभेद थे, जैसे आर्मी कब खड़ी की जाय इस पर मतभेद थे, माओ भारत का चेयरमैन है, इस पर मतभेद थे, किन्तु चारु मजूमदार ने यह नारा लगाया। चायना की कम्युनिस्ट पार्टी ने चारु मजूमदार को यह नारा लगाने से मना किया। इसी बात पर चारु मजूमदार के साथ मतभेद निर्माण हुए। नक्सलवादी आन्दोलन में गतिरोध निर्माण हुआ। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि गुटबंदी जैसी कि राजनीतिक दलों में होती है, उसके लिए केवल व्यक्तिवाद जिम्मेदार नहीं है। कुछ न कुछ सिद्धान्त, कुछ न कुछ व्यावहारिक बात जैसे पार्लियामेन्ट्री चुनाव में हिस्सा लेना, नहीं लेना, मास आर्गनाईजेशन चलाना या नहीं चलाना, कई मुद्दों पर, कई विषयों पर आपसी मतभेद निर्माण हुए और उनके कई टुकड़े हुए। किन्तु यह बात स्पष्ट है कि नक्सलवादी होने के लिए हिम्मत चाहिए। क्योंकि नक्सलवादी बन कर कोई आदमी अपने जीवन काल में प्रधानमन्त्री बनने की आशा नहीं कर सकता। अवसरवादी तो प्रधानमन्त्री जल्दी बन जाते हैं। जो वास्तव में ध्येयवादी हैं—ऐसे शिक्षित लोग नक्सलवाद अपनाते हैं। उसके लिए कष्ट सहन करते हैं। यह उनकी "प्लस साइड" है किन्तु दूसरी साइड यह है कि सभी बुद्धिमान नेता हैं। इसलिए आपस में उनका कभी जमता नहीं है। प्रत्येक समय मतभेद चलते ही रहते हैं। कभी रणनीति के बारे में, तो कभी सिद्धान्त के बारे में मतभेद प्रकट होते हैं। एक और बात है। कभी-कभी उनको जल्दबाजी भी हो जाती है। जैसे पालिटिकल लोगों को होती है। पालिटिकल लोग जल्दबाजी में असामाजिक तत्वों को अपने साथ जोड़ लेते हैं। ठीक उसी प्रकार असामाजिक तत्व नक्सलवादियों के साथ जुड़ गये, किन्तु सभी असामाजिक तत्वों को नियंत्रण में रखना कठिन काम है। इसके कारण नक्सलवाद की बदनामी भी हुई। नक्सलवाद वहाँ बढ़ सकता है जहाँ असन्तोष है। नेता त्यागी हैं इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु संगठन उनके बस का रोग नहीं। जो तुरन्त प्रभाव बढ़ाने के लिए संगठन में आते हैं और अपने साथ असामाजिक तत्वों को लाते हैं उसके दुष्परिणाम भी उन्हीं को भुगतने पड़ते हैं। असामाजिक तत्वों पर नियंत्रण करने की क्षमता उनके अन्दर नहीं होती है। यह एक समस्या है।

आतंकवाद की समाप्ति सरकार की इच्छा पर निर्भर

आज जो पंजाब और काश्मीर की समस्या है, उसके बारे में परेशान होने की बात नहीं। काफी लोग नाराज हो जाते हैं और कहते हैं कि हर दिन लोग मर रहे हैं। हत्यायें हो रही हैं और आप कहते हैं कि कोई चिन्ता की बात नहीं है। चिन्ता उस बात की करनी चाहिए जो समस्या हमारे ताकत से बाहर है। यह समस्या हमारे ताकत से बाहर नहीं है। आतंकवाद तो एक रेगुलर साइन्स है। दूसरे महायुद्ध के समाप्त होने के बाद मध्य अमरीका और दक्षिण अमरीका

जिसको लैटिन अमरीका कहते हैं, इसमें आतंकवाद का निर्माण हुआ। बाद में यह आतंकवाद सारी दुनिया में फैल गया। किसी नए शस्त्र का प्रयोग स्थल, काल, परिस्थिति के अनुसार करना ही पड़ता है। उसमें आवश्यकतानुसार बदल भी किया जाता है। दुनिया की सभी सुसंस्कृत सरकारें आतंकवाद के साइन्स को जानती हैं। हमारी सरकार भी बखूबी जानती है।

जब वर्षों से आतंकवाद चला आ रहा है तो वह कैसे समाप्त हो, उस शास्त्र का भी निर्माण हुआ है। हमारी सरकार भी वह शास्त्र जानती है। अब प्रश्न उठता है कि यदि आतंकवाद को समाप्त करना सचमुच में हमारे बस की बात नहीं है तो यह चिन्ता का विषय है। क्या आतंकवाद यह सही समस्या है? पंजाब में खालिस्तान के बारे में पहले जब माँग उठाई गई उस समय वह आतंकवाद के आधार पर नहीं उठाई गई। हिन्दुस्तानमें "रीजनल इम्बैलेंसेज" हैं। जो राष्ट्रभक्त थे उन्होंने खालिस्तान की माँग का समर्थन किया। जिन्होंने समर्थन किया वह भी आतंकवादी थे, ऐसी बात नहीं है। जैसे विदर्भ में भी आन्दोलन होता है, तेलंगाना में आन्दोलन होता है। पहले जो आन्दोलन का स्वरूप था, वह था। बाद में उसको व्यापक जन-समर्थन मिला। आतंकवादियों ने उस आन्दोलन को अपने हाथ में ले लिया और गैर आतंकवादी लोग देखते रहे, हाथ पर हाथ धरकर असहाय से हो गये, क्योंकि आन्दोलन की बागडोर उनके हाथ से निकल चुकी थी। यह बात कई लोगों के ध्यान में नहीं आई। बहुत पहले ऐसी चर्चा थी कि सारे सिख खालिस्तान के पक्षधर हैं। गैरसिख हिन्दुओं के साथ जब सिख हिन्दुओं की हत्या होना शुरू हुआ, जिनकी हत्या का प्रतिशत गैर सिख हिन्दुओं की तुलना में बढ़ा तो लोगों के दिमाग में आने लगा कि शायद यह और कोई बात है। समाचार-पत्र पढ़कर तो सारी स्थिति का पता नहीं चलेगा।

पंजाब के आतंकवादी हों या काश्मीर के, क्या वे हम लोगों से बहादुर हैं। हम जिस मिट्टी के हैं उसी मिट्टी से वे भी निकले हैं। अपने भाई हैं। अपने खानदान के हैं। जो हमारा है वही उनका है। एकदम यह इतने बहादुर कैसे हो गये यह सोचने की बात है। एक छोटा उदाहरण देता हूँ। उदाहरण अच्छा नहीं है किन्तु समझने के लिए दे रहा हूँ। एक आदमी अपनी बहन के साथ मार्केट गया था। लोग जानते थे वह मर्द है, पहलवान है। इसकी बहन के साथ छेड़खानी करेंगे तो वह मर्द छेड़खानी करने वालों की हड्डी-पसली चूर-चूर कर देगा। मार्केट के गुण्डे पहलवान की बहन को तिरछी नजर से देख नहीं सकते हैं। यदि लोगों (गुण्डों) को यह पता है कि लड़की के साथ उसका भाई नामर्द (कमजोर) है तो बाजार के गुण्डे छेड़खानी अवश्य करेंगे। लेकिन जो प्रत्यक्ष गुण्डा नहीं है वह अपनी उंगली भी नहीं उठाएगा।

जब लोग जानते हैं कि केन्द्र सरकार को कुछ करना ही नहीं है तो कोई भी आतंकवादी हो सकता है। किसी भी प्रश्न के मूल में जब तक हम नहीं जाएँगे तब तक उसका सही स्वरूप ध्यान में नहीं आएगा। सरकार आतंकवाद के विरुद्ध कोई सख्त नीति अपनाने वाली नहीं है—यह स्पष्ट होने के कारण आतंकवाद बढ़ा है। आतंकवाद को कैसे समाप्त करना, यह बात केन्द्र सरकार जानती है। लेकिन वह आतंकवाद को समाप्त करना ही नहीं चाहती है। तमिलनाडु में सात-आठ वर्ष पहले ब्राह्मणों की कान्फ्रेन्स हुई। उन्होंने तमिलनाडु में ब्राह्मण एसोसियेशन स्थापित की और कहा हम अल्पसंख्यक हैं, हमको मायनॉरिटी को जो सुविधा मिलती है—वह सुविधायें मिलनी चाहिए। हम हिन्दू नहीं हैं। और तो और जो संन्यासी हैं ऐसे रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों ने उच्च न्यायालय में कहा कि हम हिन्दू नहीं हैं। हम रामकृष्णायत हैं। हमारे ऐजूकेशनल इन्स्टीट्यूशन को वह सभी सुविधायें मिलनी चाहिए जो मायनॉरिटी एजूकेशनल इन्स्टीट्यूशन को मिलती हैं। तो इन संन्यासियों पर किसका दबाव था? तमिलनाडु के ब्राह्मणों पर क्या पाकिस्तान का दबाव था? राष्ट्र की एकात्म धारा में रहना भी पागलपन है। जो इस धारा के साथ रहेगा उसको घाटा तो होना ही है। राष्ट्रीय धारा से अलग होने की प्रवृत्ति से लाभ होता है। जब तक इस प्रकार की व्यवस्था हमारे संविधान में रहेगी, तब तक अलगाववादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिलेगा ही। किन्तु जहाँ काश्मीर और पंजाब का सवाल है, क्या इन दोनों प्रदेशों की सरकारों ने पूरी ताकत के साथ, केवल वन प्वाइंट प्रोग्राम (एक सूत्रीय कार्यक्रम) आतंकवाद को समाप्त करना है—ऐसा कार्यक्रम बनाया? क्या सरकार असफल हो गई? अब काश्मीर में मुसलमान हैं। बड़े बहादुर हो गये हैं। वे सब तो हमारे ही खानदान के थे। सभी पंडित थे, पहले कभी भी इन्होंने तलवार हाथ में नहीं उठाई। आज एकदम कैसे बहादुर बन गये। तो वही बात है नामर्द आदमी के साथ यदि उसकी बहन मार्केट जाती है तो झमेले खड़े होते हैं।

भारतीय किसान संघ के लोग किसान संघ के काम से तराई इलाके में गये थे—उत्तर प्रदेश में वहाँ आतंकवाद अधिक है। हत्या के बजाय अपहरण की प्रवृत्ति ज्यादा है। हमारी जो बैठक चल रही थी उसकी रक्षा के लिए 135 सिक्योरिटी गार्ड रखे गये थे। जब बैठक चल रही थी उसी समय एक अपहरण हुआ, जिसका अपहरण हुआ था उससे भारतीय मजदूर संघ के पदाधिकारी का सम्बन्ध था। बहेड़ी में भारतीय चीनी मिल मजदूर संघ चल रहा है, जो अपने से सम्बद्ध है। यूनियन के अध्यक्ष का नाम श्री नयन सिंह, उन्हीं के लड़के का अपहरण हुआ था। उनके भाई नगराध्यक्ष होने के नाते बहुत हलचल हुई। लेकिन दोनों भाई पुलिस में नहीं गये, बोले पुलिस में जाने से कोई लाभ नहीं है। वे दोनों सीधे जाकर ऐसे लोगों से मिले, जिनमें कोई न कोई आतंकवादी है।

उन्होंने उनसे कहा यदि हमारा लड़का तीन दिन में वापस नहीं आया तो हम दोनों भाई मिलकर आपके पूरे परिवार का मर्डर करने वाले हैं। आप और आपके परिवार का मर्डर होगा यह बात ध्यान में रखिए। तीसरे दिन लड़का वापस आना चाहिए। तीसरे दिन सुबह उनका लड़का वापस आ गया। उसके शरीर पर अच्छी शाल थी। नए गरम कपड़े थे। उसकी जेब में जेब खर्च के लिए 300 रु० थे। हालांकि एक रात के प्रवास के लिए 300 रु० जेब खर्च की आवश्यकता नहीं है। आतंकवादियों ने लड़के से कहा था कि जाकर अपने चाचा और पिता जी से कहना कि उनका व्यवहार हमारे साथ अच्छा था। इसका मतलब क्या है? हमने कन्ट्रोल करने का प्रयत्न किया, प्रयास किया और कन्ट्रोल नहीं हुआ, ऐसा कहा जा सकता है क्या? अब देखिये रिबेरो को इनकी व्यवस्था करने में शासन ने मुक्त हस्त छोड़ा होगा क्या? वह सारी स्थितियों को नियन्त्रण में लाने की क्षमता रखते हैं। जगमोहन को तो इसलिए निकाला गया क्योंकि वह पूरी स्थिति को नियन्त्रण में ला सकते थे और रिबेरो को भी मुक्त हस्त नहीं छोड़ा गया। जिनको फ्री हैण्ड नहीं दिया जाता उनकी बड़ी विचित्र स्थिति होती है। दिन में 18 लोगों को गिरफ्तार किया। रात में दिल्ली से फोन आता है उन 18 लोगों को छोड़ दो। 18 लोगों को अरेस्ट किया और रात में छोड़ दिया तो पुलिस के "मॉरल" का क्या होगा? तो आतंकवाद को समाप्त करने का वन प्वाइंट प्रोग्राम रहा क्या? आतंकवाद खत्म हो जाय किन्तु अगले वर्ष वोटिंग का समीकरण भी नहीं बिगड़ना चाहिए। अर्थात् दो दिशा में जाने वाले दो घोड़ों पर आप सवारी करेंगे और कहेंगे कि आतंकवाद को कन्ट्रोल करना सम्भव नहीं है। यानि सांप भी मरे और लकड़ी भी न टूटे की कहावत चरितार्थ होगी। आतंकवादियों के हाथ में ए.के. 47 है। हमारे सिक्योरिटी गार्ड्स के पास 20–30 वर्ष पुरानी मस्केट। सरकार कहती है कि हमारे पास शस्त्र नहीं हैं। यह बात सही नहीं है। सच तो यह है कि हमारे पास इतने हथियार हैं जो ए.के. 47 के बाबा हैं। अच्छे शस्त्र एक जगह हैं और मरने वाली पुलिस दूसरी जगह। वास्तव में आतंकवाद को कुचलने की सरकार की इच्छा नहीं है। विश्वास मानिए सरकार की जब इच्छा होगी आतंकवाद तभी समाप्त हो जाएगा।

1964 की बात है नागालैण्ड में विद्रोह चल रहा था। नागालैण्ड की आबादी साढ़े चार लाख है। मैंने राज्य सभा में प्रश्न किया था, मिनिस्टर ने कहा कि इतनी सेना है, उतने शस्त्र हैं। मैंने पुनः प्रश्न किया कि इतनी सेना और शस्त्रास्त्र के साथ हम नागालैण्ड को कन्ट्रोल नहीं कर पाये, तो आखिर कारण क्या है? उन्होंने कहा कि टेरेन इज डिफीकल्ट। टेरेन माने ऊबड़-खाबड़। जंगल हैं, पहाड़ियाँ हैं। अपने को भी पूरा पता नहीं था। एक दिन मेरे बचपन का साथी, जो आर्मी में आफीसर था और नागालैण्ड में ही उसकी

पोस्टिंग थी मैंने उससे नागालैण्ड के बारे में जानकारी ली और यह भी कहा कि हमारे मिनिस्टर साहब तो कहते हैं कि टेरेन इज डिफीकल्ट। उसने कहा कि—"मिनिस्टर इज नाइदर सोल्जर नॉर कमाण्डर।" हमने कहा कि तुम यह बताओ कि तुम लोग कन्ट्रोल क्यों नहीं कर पा रहे हो ? उसने कहा सुन, हमारे लिए दिल्ली का आर्डर क्या है ? डोन्ट शूट अनलेस यू आर शूटेड। यानि जब तक आपके ऊपर दुश्मन गोली नहीं मारता तब तक आप दुश्मन पर गोली नहीं चला सकते। उसने कहा कि यदि मेरे ऊपर गोली चलाता है तो मैं जबाव देने के लिए यदि जिन्दा रहूँगा तभी तो गोली मारूँगा। तो जब यह आर्डर है कि डोंट शूट अनलेस यू आर शूटेड तो फिर हम कर ही क्या सकते हैं ?

इसका एक विपरीत उदाहरण देखिये—हालांकि यह उदाहरण सीमित सज्जनों में दे रहे हैं कि हाउ टु कन्ट्रोल एण्ड फिनिश टेररिजम। जिसके बारे में यह उदाहरण दे रहा हूँ उनके सिद्धान्त से मैं सहमत नहीं हूँ। 1931, 1932, 1933 की बात है, जर्मनी के प्रशिया प्रान्त में कम्युनिस्ट बहुत बलवान हो गये थे और उन्होंने आतंकवाद फैलाया था, जैसा अपने यहाँ चलता है उसी तरह का आतंकवाद फैला था—दुश्मन का गला घोंटना, प्रॉपर्टी को अँगार लगा देना, डाइनामाइट से उड़ा देना, यह सब कुछ कम्युनिस्टों ने चलाया था। जहाँ कोई घटना होती थी, तो पुलिस के पास जाना पड़ता था। शान्ति व्यवस्था के लिए पुलिस को वहाँ जाना पड़ता था। पुलिस को लाठी चार्ज करना, एयर गैस छोड़ना पड़ता था यहाँ तक कि फार्यरिंग भी करनी पड़ती थी। फार्यरिंग हो जाय पर कोई मृत्यु भी न हो, कोई घायल भी न हो इस तरह की कोई पद्धति नहीं है। इसके कारण लोग घायल होते थे। लोगों की मृत्यु भी होती थी। यह बात पार्लियामेंट में पहुँची उस समय हार्ट पेटेन हेड आफ दि स्टेट थे। वे उतने ही कमजोर थे जितने एकाध को छोड़ दीजिये, तो हिन्दुस्तान के सभी प्रधानमंत्री रहते आये हैं। उधर कुछ फार्यरिंग हुई, मृत्यु हुई तो दूसरे ही दिन कम्युनिस्टों ने हल्ला मचाया कि पेटेन साहब तानाशाह बन गये हैं। काहे के तानाशाह ! वे तो भीगी बिल्ली की तरह रहते थे। लेकिन पेटेन साहब तानाशाही ला रहे हैं ऐसा शोर-गुल होने के बाद पेटेन साहब खड़ा होकर कहते थे—भाई गड़बड़ मत करो, मैं इन्क्वायरी निश्चित करता हूँ। अब देखा जाय तो ऐसा लगता है कि यह नार्मल कोर्स है। प्रत्यक्ष में क्या होता है जरा देखो। इन्क्वायरी इन्सटंट होती थी। कम्युनिस्ट उसको जान-बूझकर सार्वजनिक स्वरूप देते थे। बड़े-बड़े इज्जतदार पुलिस आफीसर्स को कटघरे में खड़ा किया जाता था। जनता वहाँ रहती थी। पुलिस डिपार्टमेन्ट के लोग वहाँ रहते थे। सबके सामने क्रास इक्जामिन का काम थर्ड क्लास का गुण्डा कम्युनिस्ट करता था। क्रॉस इक्जामिन करने वाला मखौल उड़ा सकता है। हास्यास्पद स्थिति बनाने का प्रयास कर सकता है। पुलिस के अधिकारी अपमान महसूस करते थे। पाँच छः

बार जब ऐसा हुआ तो पुलिस वालों में प्रतिक्रिया हुई। प्रतिक्रिया हुई कि लॉ अँड आर्डर रखने के लिए हम फार्यारिंग करते हैं और आप ही हमें अपमानात्मक परिस्थिति में खड़ा करते हैं। हमें क्या लेना देना है? तुम जानो, तुम्हारा लॉ अँड आर्डर जाने। हम सब इन्टरफियर करने वाले नहीं हैं। पुलिस डिपार्टमेन्ट उदासीन हो गया। आतंकवादी कम्युनिस्टों ने जोर पकड़ा। चुनाव का समय आ गया। हिटलर की नाजी पार्टी चुनकर आई। हिटलर ने पहला एप्वाइन्टमेन्ट किया वह था प्रशिया के होम मिनिस्टर के नाते मार्शल गोअरिंग का। मार्शल गोअरिंग ने गृह मंत्रालय का चार्ज लिया। उन्होंने पुलिस आफीसर्स की बैठक बुलाई और उनके सामने मार्शल गोअरिंग ने मात्र तीन मिनट का भाषण दिया और कहा कि "वी आर पार्टीकुलर एबाउट लॉ अँड आर्डर सिचुवेशन"—हम शान्ति-व्यवस्था के लिए बहुत सतर्क हैं। "यू शुड बी रिसपांसिबुल फार लॉ अँड आर्डर"—हम आपको लॉ अँड आर्डर के लिए जिम्मेदार समझते हैं। उन्होंने आगे कहा कि "वी आर पार्टीकुलर एबाउट लॉ अँड आर्डर सिचुवेशन—वी होल्ड यू रिसपांसिबुल फॉर लॉ अँड आर्डर—एवरी बुलट फ्राम योर रायफल इज ए बुलेट फायर फ्राम माई रायफल" अर्थात् हम शांति-व्यवस्था के लिए बहुत सतर्क हैं—हम आपको शान्ति-व्यवस्था के लिए जिम्मेदार समझते हैं। आपकी रायफल से निकली प्रत्येक बुलट मेरे रायफल से निकली हुई बुलट है। ऐसा करने से वहाँ शान्ति स्थापित हुई। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि सरकार इच्छा कर ले तो आतंकवाद समाप्त हो सकता है। जब तक सरकार की इच्छा नहीं होगी तब तक आतंकवाद चलता ही रहेगा। सरकार के बस में सभी समस्याओं का हल है। किन्तु वह करना नहीं चाहती, यही एक चिंता का विषय है।

०—×—०

राष्ट्रीय तकनीकी नीति बननी चाहिए। फिर उस नीति के प्रकाश में अलग-अलग उद्योगों का विचार हो। आज ऐसी नीति है ही नहीं। लोग यह मानते-समझते हैं कि तकनीक या तकनीकी का सवाल मात्र मालिक और मजदूरों के बीच का प्रश्न है, पर ऐसा नहीं है। नई तकनीक माने एक तरह से नई संस्कृति ही है। सब कुछ नई रचना है। तो इस सिलसिले में "राष्ट्रीय तकनीकी नीति" की माँग करने वाला पहला श्रम संगठन भारतीय मजदूर संघ ही है—दूसरा कोई नहीं।

हम पागल हैं इसीलिए भारतीय मजदूर संघ है। हमने प्रारम्भ से ही चेतावनी दी थी कि जो चतुर हैं उनको भारतीय मजदूर संघ में आना ही नहीं चाहिए। जो पागल हैं, जिनका जरा दिमाग का पेंच कुछ ढीला है वही भारतीय मजदूर संघ में आयें।

किन्तु हम राष्ट्र को आश्वासन देना चाहते हैं कि राष्ट्र के पुर्ननिर्माण का, गरीबों की गरीबी दूर करने का, रोने वाले लोगों के आँसू पोंछने का, अन्त्योदय (unto the last) का, माने देश के छोटे-से-छोटे और गरीब-से-गरीब व्यक्ति के उत्कर्ष सिद्ध करने का जो प्रमुख साधन है उस साधन के रूप में भारतीय मजदूर संघ रहेगा। और इसीलिए जो व्यवहार-चतुर लोग हैं उनको हम कहेंगे कि साहब ! आप भारतीय मजदूर संघ के बाहर हट जाइये। आप प्रधानमंत्री बनिये। आप दुनिया के प्रैसीडेंट बनिये। लेकिन हमने परम वैभव सिद्ध करना है। आप आयेंगे, और जायेंगे। हम तो राष्ट्र के परम वैभव के लिए काम कर रहे हैं। और वह हम करके रहेंगे।

गरीबों की गरीबी दूर करेंगे। रोने वालों के आँसू पोंछेंगे। आखिरी आदमी के उत्कर्ष तक हम काम करते रहेंगे और इसके लिए ही हमारा यह पागलपन है।

—**श्रद्धेय ठेंगड़ी जी**

मुद्रक : उर्वशी प्रेस, 49/3, वैद्यवाड़ा, मेरठ-250 002 फोन : 21029